

दोहा शिक्षक धर्म प्रसिद्ध यहि, पढि नर शास्त्र विधान।
कृत्य अकृत्यन शुभ अशुभ, जानत वर मतिमान ॥३॥

अर्थ—मेरे मनुष्य धर्मोपदेशमें प्रसिद्ध इस ग्रंथको शास्त्रालुसार
पढ़कर कार्य अकार्य तथा शुभ अशुभ कार्यको जानता है ॥३॥

तदहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां हित
काम्यया ॥ येन विज्ञान मात्रेण सर्व
ज्ञत्वं प्रपद्यते ॥ ३ ॥

दोहा—नरगन की हितकामना, हितकहिहों मैं ताहि ।

प्राप्त होति सर्वज्ञता जानि यथा विधि जाहि ॥३॥

अर्थ—उसमें मनुष्योंकी हितकामनाके लिय कहूंगा, जिसके
जाननेसे सर्वज्ञता प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

सूखशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीमरणेनच ॥
दुःखितै संप्रयोगेण पढितोप्यवसीदति

दोहा—मूरख शिष्यहि बोध वै, करि पोषण खळ नारि ।

बुखिन सग व्यवहार करि, कहत कष्ट सुविचारि ॥४॥

अर्थ—सूर्य शिष्यको सपदेश देनेसे, गृह स्त्रीके पास
करनेसे, कुत्तियोंके संग व्यवहार करनेसे, पंडितभी कुत्ता
होता है ॥ ४ ॥

दुष्टाभार्याशठमित्रमृत्यश्चोत्तरदायक
ससर्पेचगृहेवासो मृत्युरेव न सशयः॥५॥

दोहा—बंधक तिय खल मित्रजन, उत्तर दायक दास।
मरण नहीं संदेह यह, सर्प सहित गृह वास ॥ ५ ॥

अर्थ—कुष्टस्त्री, सख मित्र, तथा उत्तर देनेवाला मौकर
और सर्प सहित गृहमें निवास मृत्युरी है, इसमें संदेह
नहीं है ॥ ५ ॥

आपदर्थे धन रक्षेद्वारान् रक्षेद्धनैरपि ॥
आत्मानमततरक्षेद्वारपि धनैरपि ६॥

दोहा—आपत्ति हित रक्षहि बनहि, धनने अधिकी नारि
धन तिय ते अति रक्षही, आत्महि सदा विश्वारि ॥ ६ ॥

अर्थ—विपत्तिके समयक लिये धनकी रक्षा करे, स्त्रीकी
धनसे रक्षाकरे तथा अपनना निरंतर द्वारा तथा धनसभी
रक्षा करे ॥ ६ ॥

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमंतश्च किमाप्र-
दः ॥ कदाचिच्चलितालक्ष्मीः संचिताऽपि
विनश्यति ॥ ७ ॥

दोहा—घनधानन फहै विपति कह धन सखहु हितकछा
संचित बंधल लक्ष्मी, होत कदाचित नष्ट ॥ ७ ॥

वर्ष—आपत्तिके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये श्री-
मंतोकोमी क्या आपत्ति होती है हाँ, कदाचित्त बंधल
लक्ष्मी होतो एकदम हुईभी नष्ट होजाती है ॥ ७ ॥

यस्मिन्देशेनमन्मानो नवृत्तिर्नचबां-
धवः ॥ नचविद्यागमोप्यस्तिवासतत्रन
कारयेत् ॥ ८ ॥

दोहा—नाहि आवर जिहि देश नाहि, बंधु जीविका नाहि
विद्या आगम नाहि जितै, रहिये नौहि तहाँहि ॥ ८ ॥

वर्ष—जिस देशमें समाज नहीं है, न सपजीविका है, न बंधु है,
यात विद्या की प्राप्ति भी नहीं है वहाँ निवास न करे ॥ ८ ॥

धनिकः श्रोत्रियो राजानदीवैद्यस्तु पञ्चमः
पञ्चयत्रन विद्यते न तत्रादिव्रसंवसेत् ॥९॥

दोहा—श्रुति विद्याविद्वि विप्र सरि, धनिक तथा नरपाल।
जित न पञ्च तित दिवस इक, नौहिं काटिये काढा ९॥

अर्थ—धनवान, श्रुति निष्ठ ब्राह्मण, राजा, नदी, वैद्य, यह
पाँच जहाँ नहीं हैं तहाँ एक दिन भी न रहे ॥ ९ ॥

लोकयात्रामयलज्जादाक्षिण्यत्याग
शीलता ॥ पञ्चयत्रन विद्यते न कुर्या
त्तत्र सगतिम् ॥ १० ॥

दोहा—स्याग चतुरता भय शरम, आजीविका प्रसंग।
जित न पञ्च तितकीजिये, नौहिं प्रीति कोढग ॥१०॥

अर्थ—आजीविका, भय, लज्जा, चतुरता, त्यागशीलता,
(ये) पाँच जहाँ नहीं हैं। तहाँ संगीत न करे ॥ १० ॥

जानीयात्प्रेषणेभृत्यान् बांधवान् व्य-
सनागमे ॥ मित्रचापत्तिकाले तु भार्याश्च
विभवक्षये ॥ ११ ॥

(सार) प्रेषण कारण सृष्ट्यु बंधुजन, विपत्ति आगमन
मोहीं। आपत्ति विम्व समय और बहुत सिय गम परस्त्री आई ११

अर्थ-कार्य के छिये भेजने में नौकरी की, दुःख के समय
में बंधुमोकी, आपत्ति समय में मित्रोंकी, तथा विम्व के
नाश होनेमें स्त्रीकी परीक्षा करे ॥ ११ ॥

आतुरेव्यसनेप्राप्तेदुर्मिशद्वारचूपजोई ॥
राजद्वारेश्मशानेचयस्तिष्ठतिसवांधव.

(सार) आतुरता दुःख प्राप्ति समय दुर्मिशद्वार चूप जोई ।
संकट समय मसान ठाम मई, निष्ठत बौधव सोई ॥ १२ ॥

अर्थ-रोगादिकों के समय आतुरता में, संकट के प्राप्त
होनेमें, दुर्मिश, तथा शत्रुद्वारा संकट उपस्थित होनेमें
राजद्वार, तथा मसानमें जो सहायता दता है, वही बंधु है ॥ १२ ॥

योध्रुवाणिपरित्यज्यअध्रुवपरिसेवते ॥
घुदाणिनग्गतश्चतिअध्रुवनष्टनेवहि ॥

[सार । निश्चित त्यागि अनिश्चित सबन फल अद्वि ओ
कोई । निश्चित तासु नशात अनिश्चित नाशकस्त ही आई ॥ १३ ॥
अर्थ-जो निश्चित पदार्थोंको त्यागकर अनिश्चित पदार्थ

की सेवा करता है, उसका निमित्त पदार्थ नाश होजाता है और अनिमित्त तो नहीं है ॥ १३ ॥

वरयेत्कुलजाप्राज्ञोविरूपामपिकन्य-
काम ॥ रूपशीलाननीचस्य विवाहः
सदृशेकुले ॥ १४ ॥

दोहा—रूपहीन कन्या वरै, शुभ कुल की मतिमान ।
रूपवती नहीं नीचकी, समकुल व्याह विधान ॥ १४ ॥

अर्थ—बुद्धिमान जन अच्छे कुलकी कुरूप कन्याको भी
व्याह ले, पर नीच की रूपवती कन्या नहीं (क्योंकि)
विवाह समान कुल में होना चाहिये ॥ १४ ॥

नखीनांशस्त्राणीनां नदीना शृङ्गि-
णां तथा ॥ विश्वासोर्नैवकर्त्तव्यः स्त्रीषु-
राजकुलेषुच ॥ १५ ॥

दोहा—नखी सरित नारी तथा, शरु धारक हयियार ।
नहीं उचित विश्वास कृत, शृंगी धंश भुवार ॥ १५ ॥

अर्थ—नखवालों, नदियों, शींगवालों, शस्त्रधारियों, स्त्रियों
राजकुलवालों का विश्वास न करे ॥ १५ ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यं मेघ्यादपि च कौ-
चनम् ॥ नीचादप्युत्तमा विद्याञ्जिरनन्दु-
ष्कुलादपि ॥ १६ ॥

बोहा—अमिय गरल सन अशुचि थल, कवन अति अ
मिराम । विद्याकीजै नीच सों, नीच वश पर बाम ॥ १६ ॥

अर्थ—बिय से भी अमृत, अपवित्र स्थान से भी पुण्य,
नीच से भी उत्तम विद्या, नीच कुलसे भी वरम श्री रत्न
ब्रह्म करना चाहिये ॥ १६ ॥

आहारो द्विगुण स्त्रीणां लज्जा चापि-
चतुर्गुणा ॥ साहसं षड्गुणञ्चैव काम-
श्चाष्टगुण स्मृत ॥ १७ ॥

बोहा—भारिम भोजन द्विगुण अरु, लज्जा त्रैगुण होत ।
साहस षट् गुण अरु मयम, अठगुण होत उद्योत ॥ १७ ॥

अर्थ—स्त्रियों का भहार द्विगुण, और लज्जा त्रैगुण होती-
है तथा साहस षट्गुण, और काम अष्टगुण कहा है ॥ १७ ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः

अनृत साहस माया मूर्खत्वमतिलोभ-
ता ॥ अशौचत्वनिर्दयत्वस्त्रीणांदोषाः
स्वमान्नजाः ॥ १ ॥

दोहा—असत मूर्ख मति लोभ अति, साहस निरदयभाव
छक्क अशुद्धता मायाव, अंगल दोष स्वभाव ॥ १ ॥

अर्थ—असत्य साहस, माया, मूर्खता, तथा बहुत स्त्री-
बलवा निर्दयता स्त्री के स्वभावदोष हैं ॥ १ ॥

भोज्य भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्व-
रांगना ॥ विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य
तपस फलम् ॥ २ ॥

दोहा—असत शुभगतिय अरु विभव, शक्ति सुभोजन मूर्ति
दान शक्ति अरु शक्ति रति, लघु तप को फल मूर्ति ॥ २ ॥

अर्थ—अष्टौ भोज्यपदार्थेषु भोजनकी शक्ति स्त्री प्रसंगकी
सामर्थ्य भेद स्त्रीः विभव और दानशक्ति अल्प तप का फल
है ॥ २ ॥

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दाद्
 गामिनी ॥ विभवे यश्च सतुष्टस्तस्य
 स्वर्गइहैवहि ॥ ३ ॥

दोहा—जासु नारि अनुगामिनी तथा पुत्र वक्ष आहि ।
 वैभव मई जो सुखित, इत निश्चय सुरपुर ताहि ॥ २ ॥

अर्थ—बिषका पुत्रवशमें है, वही भद्रकूल है और जो विभव
 में संतुष्ट है, उसे यही ही निश्चय स्वर्ग है ॥ ३ ॥

ते पुत्राय पितुर्मत्ता स पितायस्तुपो-
 षक ॥ तन्मित्रं यत्र विश्वास सा भार्या-
 यत्र निर्हतिः ॥ ४ ॥

दोहा—जो पितु मत्त पुत्र सो जो पोषक पितु तौन ।
 वही मित्र विश्वास जित, सो तिय सुखदा जौन ॥ ४ ॥

अर्थ—जो पिताको भक्त है, वही पुत्र है, और जो पोषक
 है, वही पिता है, जहाँ विश्वास है, वही मित्र है, जिससे परम
 सुख हो वही भार्या है ॥ ४ ॥

परोक्षेकार्य्यद्वतारंप्रत्यक्षेप्रियवादिनम्
वर्जयेत्तादृशमित्रविषकुम्भं पयोमुखम्

दोहा—अर्थ नशावत पीठ पर, कह सम्मुख सृष्टु बात
पय मुख विषघट सम हृदय, तजिय मित्र इमि नात ॥ ५ ॥

अर्थ—पीठ पीछे काम बिगाडने वाले, सामने मित्र भाषी;
ऐसे हृत् पर दूषके समान विष घट मित्रको त्यागदे ॥ ५ ॥

नविश्वमेत्कुमित्रेच मित्रेचापिनविश्व-
सेत् ॥ कदाचित्कुपित मित्रं सर्वं गुह्यं
प्रकाशयेत् ॥ ६ ॥

दोहा—करहि मरोस न मित्र खल, अरु न मित्र विश्वास-
कुपित कदाचित मित्र सब, करहि रहस्य प्रकास ॥ ६ ॥

अर्थ—दुष्ट मित्रका विश्वास न करै, और मित्रकाभी सर्व-
था विश्वास न करै, कदाचित् कुपित मित्र सब गुह्य रहस्यों
को प्रगट करदेसा है ॥ ६ ॥

मनसार्चितित कार्य्यं वाचा नैव प्रका-

शयेत् ॥ मंत्रेण रक्षयेद्ब्रूढं कार्ये चापि नि-
योजयेत् ॥ ७ ॥

दोहा—मन संकल्पित काजजनि, वाणीसन उच्चार ।
राखि गुप्तशुभ मप्रसों, सिद्धि कृत महीं निरवार ॥ ७ ॥

अर्थ—मनसे विचारें हुए कार्य को वाणी से प्रकाश न करे
उर्ध्व सम्पत्तिसे श्रेष्ठ रक्षित रखे, और कार्य में भी नियोजित
करे ॥ ७ ॥

कंष्टं च खलु मुखत्वं कष्टञ्च खलु यौ-
वनेनम् ॥ कष्टात्कष्टतरं चैव परमं हेनि-
वासनम् ॥ ८ ॥

दोहा—मूर्खता निश्चय दुखद, यौवन वय दुखरात्र ।
अरु निश्चय दुखतर दुखद, पर अवास को वास ॥ ८ ॥

अर्थ—निश्चय ही मूर्खता दुःखदायक है, निश्चय युवावस्था
कष्टदायक है, और पराये घर रहना कष्टसे भी अति
हरे ॥ ८ ॥

शैले शैलेन माणिक्य मौक्तिकं न गजे गजे

साधवोनहिसर्वत्रचदननवनेवेने ॥ ९ ॥

दोहा—माणिक गिरि गिरि होत नहिं, मुक्त गज गज
नौहिं। साधु पुरुष सब ठौर नहिं, धन बन चंदन नौहिं ९

अर्थ—पर्वत पर्वत प्रति माणिक्य नहीं होते, हाथी हाथीमें
कुछा नहीं होते, साधुजन सर्वत्र नहीं होते; और धन बन
में चंदन नहीं होते ॥ ९ ॥

पुत्राश्च विविधै शीलैर्नियोज्या सत-
त बुधै ॥ नीतिज्ञा शीलसम्पन्ना भवति
कुलपूजिता ॥ १० ॥

दोहा—सुतन शील युत बहु गुणन, युक्त कराई बुध लोग
नीति विज्ञ मुक्त शील कुल होत सुपूजा योग ॥ १० ॥

अर्थ—पंडितों को पुत्रको अनेक प्रकारके शीलवाले
इन्होंने युक्त करवा बाहिये वे नीतिज्ञे वाणी शील संपन्न
कुलमें पूजित होते हैं ॥ १० ॥

मातारिपु पिताशत्रुर्वालोयेननपा-

ठ्यते ॥ सभामध्येन शोभते हं समध्येव-
को यथा ॥ ११ ॥

दोहा—जमनी रिपु पितु शत्रुते, जिन सन पठत न बाळ
सभा मोंहि शोभत नहीं, जिमि एक मध्य मराळ ॥ ११ ॥

अर्थ—जिनके द्वारा बाळक नहीं पढ़ाया जाता, वह मात्रा
रिपु तथा पिता शत्रु है, वह बाळक सभा में शोभा नहीं
पाता, जैसे हंस के बीच बक ॥ ११ ॥

लालनाद्वहवो दोषा. तादनाद्वहवो गु-
णा. ॥ तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च तादयेन्न तु
लालयेत् ॥ १२ ॥

दोहा—काळन महीं अति दोष बहु, तादना महीं गुण आहि
सुत शिष्यन तादना करहु ताते चाहिय नाहि ॥ १२ ॥

अर्थ—ध्यान करने से बहुत दोष हैं तादना करने में बहुत
से गुण हैं। तिससे पुत्र को और शिष्य को भी तादना की
काळन न करे ॥ १२ ॥

श्लोकेन वा तदद्धेन तदर्द्धाद्धाक्षरेण वा ॥

अवन्ध्यं दिवसकुट्याद्धानाभ्ययनकर्म-
भि ॥ १३ ॥

दोहा—इक श्लोक्या अर्थ तिहि तिहि आधे कर आध।
दिवस सदैव विलावही, कारज पठन अवाध ॥ १३ ॥

अर्थ—एक श्लोकके बाँसके आधे के बाँसके आधे क आधे
के पढ़ने के कार्य में निरंतर दिवस बितावे ॥ १३ ॥

कांतावियोग.स्वजनापमानोरणस्य
शेष.कुन्तूपस्य सेवा ॥ दरिद्रभावो विषमा-
सभा च विनाग्निमेते प्रदहति कायम् ॥ १४ ॥

(छंद) त्रिप वियोग सब घृष सेवा, सब समा स्वजन अप
कार । दरिद्र बुद्ध शेष अति यह, तम करत अनल विन
कार ॥ १४ ॥

श्रीका वियोग; सुदुरेष्ट निरादर तथा कुछ मे शत्रु
का शेष रहना, कुछ राजाजी सेवा वृत्तिता, और सुशोका
समा यह विना अग्नि शरीर के जलति हैं ॥ १४ ॥

नदीतीरे च ये वृक्षा परगेहेषु कामिनी ॥

मम्रहीनाश्वराजान शीघ्रन्नश्यन्त्यस-
शयम् ॥ १५ ॥

दोहा—सरितसीर जो तरु तथा, नारी अपर अवास ।

सखि वहीन रूप शीघ्र ही, होत अर्धसय नास ॥ १५ ॥

अर्थ—जो वृक्ष नदी के तीर हैं, तथा बूझरे घरमें स्त्री और मंत्री
विहीन राजा निःसंदेह शीघ्र वृद्ध हो जाते हैं ॥ १५ ॥

बलविद्याचविप्राणां राज्ञां सैन्यम्बल-
न्तथा ॥ बलवित्तश्च वैश्यानां शूद्राणा-
श्च कनिष्ठिका ॥ १६ ॥

दोहा—सेना बल नृपगण तथा, विद्या बल महिदेव ।

वैश्यन को बल धन तथा, शूद्रनको बल सेव ॥ १६ ॥

अर्थ—ब्राह्मणों का बल विद्या और राजाओं का बल सेना
तथा वैश्यों का बल धन और शूद्रों का बल सेवा है ॥ १६ ॥

निर्द्वेन पुरुषं वैश्या प्रजाभ्यन्नृपन्त्यजे त-
स्वगावीत फलं वृक्षं भुक्त्वा चाभ्यागतो
गृहम् ॥ १७ ॥

दोहा—नृप असक्त त्यागत प्रजा, निर्धन वेष्ट्यासाम ।
फल विहीन तरु खगपती, मींगे भोजन, साम ॥ १७ ॥

अर्थ—निर्धन पुरुषको सेवा शक्तिहीन राजाको प्रजा
करोसे मछ खुरा को पक्षी भोजन किये मरको सम्मान
स्याम देते हैं ॥ १७ ॥

गृहीत्वा दक्षिणां विप्रास्त्यजतियजमा-
नकम् ॥ प्राप्तविद्या गुरुशिष्या दग्धरण्य-
मृगास्तथा ॥ १८ ॥

दोहा—विद्यालङ्घि कै शिष्य गुरु, कामन दग्ध मृगान ।
स्यागिदेत द्विज वर्य गम, दान देय यजमान ॥ १८ ॥

अर्थ—विप्रगण शिष्या प्रदण करके सजमानकी, विद्या
प्राप्त करके पुरुषको शिष्य तथा दग्ध वन को मृगा स्याम
देते हैं ॥ १८ ॥

दुराचारी दुरादृष्टिर्दुरावासी च दुर्जनः ॥
यन्मैत्रीक्रियते पुष्मिर्नरः शीघ्रविनश्य-
ति ॥ १९ ॥

ढोहा—कुथाळ निवासी दुष्ट मति, दुष्ट हृष्टि अघमौना
संग करत जो मिश्रता, शीघ्र नष्टत नर तौन ॥ १९ ॥

अर्थ—कुथाचारी, दुष्ट हृष्टि, अयोग्य स्थान में बसने वाला
दुर्जन से जो पुरुष मिश्रता करता है, वह शीघ्र नष्ट हो जा
ता है ॥ १९ ॥

समानेशोभतेप्रीतीराशिसेवाचशोभते
वाणिज्यव्यवहारेषुस्त्रीदिव्याशोभतेगृ-
हे ॥ २० ॥

ढोहा—सोहन प्रीति समान मई, सोहन सेव नृपाळ ।
सुव्यवहार मई वाणिज्य कर गृह सोहत शुभवाळ २०

अर्थ—प्रेम स्थान में शोभा पाता है, और राजा की सेवा
शोभा पाती है । व्यवहार वाणिज्य में गया सुंदर स्त्री घर में
शोभा पाती है ॥ २० ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

कस्यदोष कुलेनास्तिव्याधिनाकेन-
पीडिताः॥ व्यसनकेननप्राप्तं कस्यसौ-
ख्यनिरंतरम् ॥ १ ॥

दोहा—किहि कुल मई नहि दोषको, पीडितव्याधि न
आहि। काहि प्राप्त दुख नहि मयो, किहिसुखरसोसदाहि१

अर्थ—किसके कुलमें दोष नहीं है कौन व्याधि से पीडित
नहीं है। जिसको दुख नहीं प्राप्त हुआ तथा जिसको निरंतर
सुख पड़े ॥ १ ॥

आचार कुलमाख्याति देशमाख्याति
भाषणम् ॥ सम्म्रस स्नेहमाख्याति
वपुराख्यातिमोजनम् ॥ २ ॥

दोहा—कुल प्रगटत शुभ आचरण, भाषण प्रगटत देश।
प्रगटत प्रेमहि मोह करु, मोजन प्रगटत वेश ॥ २ ॥

अर्थ—कुलको प्रगट करता है भाषण देशको प्रगट

करता है। सोइ प्रेमको प्रगट करता है। शरीर-ओजस को प्रगट करता है ॥ २ ॥

सुकुलैर्योजयेत्कन्यापुत्रविद्यासुयोजये-
त् ॥ व्यसनेयोजयेच्छत्रमिष्टधर्मणयो-
जयेत् ॥ ३ ॥

दोहा—कन्या शत कुल मौंहि विवाहैं, सुतहि सुविधा
देही। मित्राहैं धर्म पथ महीं कावैं, शत्रुहि आपति देही ॥

अर्थ—कन्या को अच्छे कुलमें योजित कर पुत्रको सिपा
सुक्त करे। शत्रु को शत्रुमें पोषित कर मित्रको धर्ममें उत्पन्न
करे ॥ ३ ॥

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः

सर्पो दशतिकाले तु दुर्जनस्तु पदे पदे ४

दोहा—दुर्जन महीं अहि मौंहि अहि, भलो कुटिल नर
मौंहि। सर्प समय पर हसत, पर दुर्जन पद पद मौंहि ४

अर्थ—दुर्जन में और सर्प में सर्व अच्छा है। दुर्जन नहीं सर्व
दिशी समय में काटता है पर दुर्जन तो पद पद में ॥ ४ ॥

एतदर्थं कुलीनानानृपाः कुर्वन्ति संग्रहम् ॥
 आदिमध्यावसानेषु न त्यजति च ते नृपम्
 दोहा—यहाँ ते शुभ कुल मीरन, संग्रह करत नृपाळ ।
 त्यागत नहिं नरपतिहिं ये, आदि मध्य इति कळ ॥ ५ ॥

अर्थ—इसी स्थिति में राजा कुलीन पुरुषोंका संग्रह करते हैं
 (क्योंकि ये आदि मध्य तथा अंत में राजाको नहीं त्यागते) ॥ ५ ॥

प्रलयेभिन्नमर्यादा भवति किल सागरा
 सागराभेदमिच्छन्ते प्रलयेऽपि न साधवः
 दोहा—सागर सब मर्यादा हत, प्रलय मौंहि धै जाँहि ।
 उदधि मेव चाहत प्रलय, पर सज्जन जन नाँहि ॥ ६ ॥

अर्थ—निश्चय ही सागर प्रलयमें मिश्र मर्यादा हो जाते हैं
 सागर प्रलय में मर्यादा प्रलयन की इच्छा करते हैं पर
 सज्जन नहीं ॥ ६ ॥

मूर्खस्तु परिहर्तव्य प्रत्यक्षो द्विपदः पशु
 मिथ्यते वाक्यशल्येन अदृशं कंटकं यथा ।

दोहा—शठहिं त्यागियो चाहिये, पक्षु द्विपाद प्रत्यक्ष ।
बचन शस्य हमि भेदही, जिमि कंटक बिन अक्ष ॥७॥

अर्थ—सूँस को छो त्याग मारी चाहिये [क्योंकि] वह
प्रत्यक्ष] ही] द्विपाद पक्षु है [इत्यको] बाणी रूपी कंटक
बे इस प्रकार भेदता है जैसे बिना नेत्र वाले को कंटक
रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भ
वा. ॥ विद्याहीना न शोभते निर्गन्धा-
इव किंशुका ॥ ८ ॥

दोहा—उत्तम कुल समव पुरुष, गौर रूप महान ।
विद्या विन सोहत नहिं, टेसू पुष्प समान ॥ ८ ॥

अर्थ—रूप यौवन सम्पन्न, अच्छे कुलमे उत्पन्न पुरुष बिना
विद्याके मध रहित टेसू पुष्प के समान शोभा नहीं पाते ॥८॥
कोकिलानांस्वरोरूपंस्त्रीणाम् रूपं पतिव्रतं
विद्यारूपं कुरूपाणां क्षमारूपं तपस्विनां
दोहा—कोकिल कर शुभ रूप स्वर पतिव्रत सिय रूप ।
विद्या रूप कुरूप नर, क्षमा तपस्विन रूप ॥ ० ॥

अर्थ—मीठी बाणी, कोकिलाओं का रूप है पावित्र्यत क्षिप्तों का रूप है कुरूपों का विषा रूप है, तथा तप क्षियोंका क्षम रूप है ॥ ९ ॥

त्यजेदेककुलस्यार्थं ग्रामस्यार्थंकुलत्यजेत् ॥ ग्रामजनपदस्यार्थं आत्मार्थंप्रथिवीत्यजेत् ॥ १० ॥

दोहा—कुलहित त्यागहि एक घर; कुल त्यागहि हित-ग्राम॥ग्राम देश हित लगी तजी, आत्महेतु जगधाम १०

अर्थ—कुलके अर्थ एक का त्याग करे, ग्राम के लिये कुल का त्याग करे, देशके लिये ग्राम का त्याग करे, आत्मा के अर्थ पृथ्वीका त्याग करे ॥ १० ॥

उद्योगे नास्तिदारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम् ॥ मौनेन कलहो नास्ति नास्ति जागरितेभयं ॥ ११ ॥

दोहा—किय उद्योगदरिद्रना, जपते भय नहि आहि । नहि मौन ते कलह घर, जागन महुँ भय नहि ॥ ११ ॥

अर्थ—सप्रेम करनेसे दारिद्र्य नहीं रहता, जपने से भय नहीं रहता, मोन करने से कष्ट नहीं होती आगने से भय नहीं रहता ॥ ११ ॥

अतिरूपेणवैसीताअतिगर्वेणरावण. ॥

अतिदानाद्वलिर्बद्धोऽति सर्वत्रवर्जयेत्

दोहा—रावण माझे गर्व अति, सिया हृदन अति रूप ।

अति सब दिशि वर्जिति वै अतिहि काम बलि भूप १२

अर्थ—अधिक रूपसे कारण जानकी हरी गई, अति गर्वसे रावण मारा गया, अत्यंत कामसे बलि बंधी गये । त्रिभुव अति हठा सर्वत्र वर्जित करे ॥ १२ ॥

कोहिमार समर्थानां किंदूरं व्यवसायि-

नां ॥ कोविदेश, सविद्व्यानां क. प्रियः

प्रियवादिनां ॥ १३ ॥

दोहा—को विदेश विधा घरम, काह समर्थनमार । व्य

वसायिन को दूर के, और प्रिय भाषणहार ॥ १३ ॥

अर्थ—सामर्थ्यवान पुरुषोंकी अधिक मार क्या है व्यस्ता

पिपोंको कौन [रूपान] दूर है । अच्छी विषी धारियोंको
विदश कहौ है । प्रिय बाँधियोंको कौन अप्रिय है ॥ १३ ॥

एकेनापिसुदृक्षेण पुष्पितेनसुगंधिना ॥
वामिततद्वनंसर्वं सुपुत्रेणकुलंयथा ॥ १४ ॥

दोहा—पुष्पवान तरु एक सन जाकी सुखद सुवास ।
होत सु वासित वह सुवन, जिमिकुलसुतगुणरास ॥ १४ ॥

अर्थ—कूले हुये सुगंधिवाले एक ही सुवृक्ष से वह सब वन
व्यापित होता है, जैसे वृक्षमें पुत्रसे कुल ॥ १४ ॥

एकेनशुष्कदृक्षेण दह्यमानेनवन्दिना ॥
दह्यतेतद्वनंसर्वं सुपुत्रेणकुलंयथा ॥ १५ ॥

दोहा—पातपुष्प विम एकही, तरु सौं जरत अँगार ।
खलसुत सन जिमिकुलनथा, हो सबवन वह छार १५

अर्थ—अग्निसे जलते हुए एक ही सुखे वृक्ष से वह सब वन
जलमाना है, जैसे कुपुत्र से कुल ॥ १५ ॥

एकेनापिसुपुत्रेण विद्यायुक्तेनसाधुना ॥
आह्लादितकुलसर्वं यथाचद्रेणशर्वरी ॥ १६ ॥

दोहा—एकहि विधा सहित सुत, सज्जन सुमति उदार ।
जिमि रजनी शसि सों सकळ, मुदित होत परिवार १६

अर्थ—विधा से कुछ भेद्य एकही सपुत्र से सब कुल प्रसन्न
होता है जैसे चंद्रमा से रात ॥ १६ ॥

किंजातैर्बहुभि पुत्रैः शोकसंतापकारकै ।
वरमेक कुलालबीयत्रविश्राम्यतेकुलं १७

दोहा—शोक क्लेश वायक अमित सुख भयेका काम ।
जिहित कुल विभ्रामलह इक कुल प्रियअभिराम १७।

अर्थ—शोक घेतान देने वाले उत्पन्न हुए बहुत से पुत्रों से
क्याही एकही कुलको सहाया देने वाला अच्छा है जिससे कुल
विभ्राम को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

लालयेत्पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि तादृयेत्
प्राप्ते तु षोडशवर्षे पुत्रे मित्रत्वमाचरेत् ॥

दोहा—सुत तादन दशवर्ष लों, पंचवर्ष लों प्यार । प्राप्त
वर्ष पटदश कराई, भीतसीरस व्यवहार ॥ १८ ॥

वर्ष—पूँच वर्ष पर्व्वन्त प्यार करे, दश वर्ष तक ताबना दे
 और सोतरवें वर्ष में प्राप्त होने पर पुत्र से मित्र के समान
 व्यवहार करे ॥ १८ ॥

उपसर्गेऽन्यचक्रेचदुर्भिक्षेचमयावहे ॥
 असाधुजनसंपर्के यः पलायति जीवति ॥
 दोहा—मयवात्यक दुर्मिक्ष अरु, संग असज्जन जौन
 अरि संक्राम उपसर्गमहैं, भागत जीवत तौन ॥ १९ ॥

वर्ष—उपद्रव होने पर शत्रुके आक्रमण होनेपर और
 भयानक दुर्मिक्ष में तथा दुष्टों की संगति होने पर जो भाग
 जाता है वही जीता है ॥ १९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु यस्य कोऽपि न विद्यते
 जन्मजन्मनिमत्येषु मरणतस्य केवलम् ॥
 दोहा—काम अर्थ गति धर्म मह, जाके एकहु नाहि
 ताकर कवल मरण फल, जन्म योनि नर मोहि ॥ २० ॥

वर्ष—जिनके धर्म अर्थ (तथा) काम मोक्षमें एकभी नही

शिशुम्पालयतेनित्यतथासज्जनसंगति

दोहा—मत्सी कूर्मी पक्षिणी, करत नित्य सुत प्यार ।

दर्शन पशान ध्यान ते, संगति तथा उदार ॥ ३ ॥

अर्थ—घड़की, कच्छपी, तथा पक्षिणी दर्शन ध्यान स्पर्श से नित्य बाळक का बाळन करती है, तेसेही सज्जन संगति ॥ ३ ॥

यावत्स्वस्थोद्ययदेहो यावन्मृत्युश्चदूर
त ॥ तावदात्महितकुर्यात्प्राणातेर्किंक
रिष्यति ॥ ४ ॥

दोहा—मरन दूर जबकों तथा, जबकों देह निरोग ।

आत्म हेत तबकों करहु, करहुक प्राण वियोग ॥ ४ ॥

अर्थ—जब तक यह देह निरोग है जब तक मृत्यु दूर है तब तक आत्माका हित कर, प्राणक अंत समय क्या परेगा ॥ ४ ॥

कामधेनुगुणाविद्या ह्यकालेफलदायि-
नी ॥ प्रवासेमातृसदृशी विद्या गुप्त
धन स्मृतम् ॥ ५ ॥

दोहा—विद्या गुणव अकालमहँ, सुरभी देव समान
वेधहिं माय्यो गुप्त धन, परपुर मातु समान ॥ ५ ॥

अर्थ—विद्या काम धेनु के समान गुण करने वाली व
हस्त्रमें भी कस्यद्विनी, तथा प्रवास में माताके समान है,
इसी से] विद्याको गुप्त धन कहा है ॥ ५ ॥

एकोऽपिगुणवानपुत्रो निर्गुणैश्च शतै
र्वरं ॥ एकश्चंद्रस्तमोऽहंति न च तारा
सहस्रशः ॥ ६ ॥

दोहा—निगुण सहसन ते परम, एक सुपुत्र उदार।
एक चंद्र तम नाशही, उदगन नहिं हजार ॥ ६ ॥

अर्थ—एक भी शुश्रूषान पुत्र निर्गुण सेकहो से भी बेह
है । एक चंद्रमा अंधकार का नाश करता है सहस्रो तारे नहीं
मुख्यध्विरायुर्जातोऽपितस्माज्जातमृतो
वरः ॥ मृत सचाल्पहु खाय यावज्जीव
जहोदहेत ॥ ७ ॥

अर्थ—राजा एक बारही आया देखते हैं, धड़ित एक बारही कहते हैं, कम्पा ये एक बारही की जाती हैं यह तीन एक एक बारही होते हैं ॥ ११ ॥

एकाकिनातपोद्वाभ्यां पठनगायनं त्रि
मि ॥ चतुर्भिर्गमनक्षेत्रं पञ्चभिर्बहुमीर
णम् ॥ १२ ॥

दोहा—इक ते तप बुझसंगपठन, चारि संग भळि बाट ।
कुषी पच संग गान त्रय, बहु संग कर रण ठाट ॥ १२ ॥

अर्थ—अर्के से तप, दो जनोंसे पठन, तीन जनोंसे गाना चार आदमियोंके संग चलना पांच आदमियोंके सहित सेती तथा बहुत आदमियोंके संग रण करना भला होता है ॥ १२ ॥

सामार्यायाश्चिर्दक्षा सामार्यायापति
व्रता ॥ सामार्यायापतिप्रीतासामार्या
सत्यवादिनी ॥ १३ ॥

छंद—वही नारि जो दक्ष तथा शुचि पतिव्रत
नारी । सत्यवादिनी नारि जौन सो वह तिय जो पति
प्रीति ॥ १३ ॥

अर्थ—वही स्त्री है, जो पवित्र है, तथा पतुर है वही स्त्री है जो पतिव्रता है वही स्त्री है जो सत्यवादिनी है ॥ ९३ ॥

अपुत्रस्यगृहशून्य दिश शून्यास्त्ववां-
धवा ॥ मूर्खस्यहृदयशून्यसर्वशून्यादरि-
द्रता ॥ १४ ॥

[सारठा] मूरख को दिय शून्य, पुत्रहीन घर शून्य ग्रह
दिशा अबंधुहिं शून्य, दरिद्रता महीं शून्य सब ॥ १४ ॥

अर्थ—पुत्रहीन का घर शून्य है, बंधु विहीनों की दिशाएँ
सूनी हैं। मूर्खका हृदय शून्य है, तथा दरिद्रता सर्व शून्य है
(अर्थात् दरिद्रता में सर्वत्र शून्य दीसता है) ॥ १४ ॥

अनभ्यासेविपंशास्त्रनजीर्णमोजनविपं
दरिद्रस्यविपंगोष्ठीवृद्धस्यतरुणविपम ॥
दोहा—बिन अभ्यास सु शास्त्र विप समा हेतु विप वीन
विप अजीर्ण महीं असन विप, वृद्धहिं नारि नवीन १५

अर्थ—बिना अभ्यास के शास्त्र विप है, अजीर्ण होनेसे भोजन
न विप है, दरिद्र का समा विप है वृद्ध को युवाकी
विप है ॥ १५ ॥

त्यजेद्धर्मन्दयाहीनं विद्याहीनं गुरुन्त्य-
जेत् त्यजेत् क्रोधमुखीम्भार्यान्निःस्ने-
हान्बांधवांत्यजेत् ॥ १६ ॥

दोहा—दयारहित धर्महीन सज्जान, गुरु तज विद्याहीन ।
तजै नारि रिसमुख तजै, बाँधव नेह विहीन ॥ १६ ॥

अर्थ—दयासहीन धर्म का त्याग करे, विद्यासे हीन गुरु का
त्याग करे, क्रोध मुखी स्त्री का त्याग करे, तथा छंद रहित बाँ-
धवों को त्याग करे ॥ १६ ॥

अध्वाजरामनुष्याणां वाजिनान्बंधनज-
रा ॥ अर्मेथुनजरास्त्रीणां वस्त्राणामातपो
जरा ॥ १७ ॥

दोहा—अश्वन कहैं बंधन जरा, पथ जरा नर लोग ।
वस्त्रन दित आतपजरा, तिय गन जरा अमोग ॥ १७ ॥

अर्थ—मनुष्यों का मार्गगमन मुड़ाया दे, पादों का मुड़ाया
बपन दे स्त्रियों का पुड़ाया मेथुन न करना, तथा स्त्रों का
मुड़ाया दे ॥ १७ ॥

कःकालःकानिमित्राणि कोदेशः कोव्य
यागमौ ॥ कस्याहंकाचमेशक्तिरिति
चित्यं मुहुर्मुहु ॥ १८ ॥

दोहा—कौन समय को मित्र को, मैं किमि वेश हमार
काम खर्च कर शक्ति मम, यह गुनु धाराहैं धार ॥ १८ ॥

अर्थ—समय कैसा है, मित्र कौन है। वेश कैसा है, अपना
काम खर्च किसमा है, मैं किसका हूँ मेरी सामर्थ्य कितनी है,
इस प्रकार बारबार विचार करे ॥ १८ ॥

अग्निर्देवोद्विजातीनां मुनीनांहृदिदेवत-
म् ॥ प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्रसमद-
र्शिनाम् ॥ १९ ॥

दोहा—द्विजगनकहैं प्रभुअनलमहैं, मुनिन हृदयमगधान
समदर्शिन हित ठाम सख, प्रतिमा हित अज्ञान ॥ १९ ॥

अर्थ—द्विजातियों (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों) के लिये अग्नि
देवता है, मुनियों के लिये हृदय में देवता है, स्वल्प बुद्धियों
के लिये प्रतिमामें, तथा समदर्शियों के लिये सर्वत्र ॥ १९ ॥

इति श्री चाणक्य नीतौ शिवदास पण्डित कृत भाषा

टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः प्राग्भ्यः

पतिरेवगुरु स्त्रीणांसर्वस्याभ्यागतोगुरुः
गुरुरग्निद्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणोगुरुः

दोहा - गुरु अतिथि सधकर गुरु, विप्रवर्ण जन्म चार ।

अग्नि द्विजातिन गुरु तथा, तियन गुरु भरतार ॥ १ ॥

अर्थ स्त्रियोंका भर्ता ही गुरु है सबका गुरु अतिथि है
द्विजातियों का गुरु अग्नि है, तथा सब वर्णका गुरु
ब्राह्मण है ॥ १ ॥

यथाचतुर्भिः कनकपरीक्ष्यतो निघर्षण-

च्छेदनापतादनै ॥ तथाचतुर्भिः पुरुष-

परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥

(चार) छेदि तापि पिसि बूँड चारि बिधि कनकहिं पर
सत जैस । दान शील गुण कर्म चारि बिधि पुरुषहिं परसत
सेसे ॥ २ ॥

अर्थ - जैसे घिसन छेदने, तपाने, तथा ताड़न करने इन चार
उपायों से साना पहिचाना जाता है, वैसे ही दान शीलता गुण
तथा कर्म इन चार उपायों से पुरुष पहिचाना जाता है ॥ २ ॥

तावद्भयेषुमेतव्ययावद्भयमनागतम् ॥

आगततुभयदृष्ट्वाप्रहर्तव्यमशक्या ॥३॥

दोहा—जब लगभग न भय करहु, तब लगभग भयकी शक
भय आगम अवलोकि कै, करहु, प्रहार निशक ॥ ३ ॥

अर्थ—तब तक भयसे डरना चाहिये जब तक कि भय नहीं
आया । आय हुए भयको देख कर निशंक होकर प्रहार करना
चाहिये ॥ ३ ॥

एकोदरसमुद्भूताएकनक्षत्रजातका ॥न-

मवतिसामा शीलैयथावदारिकण्टका ॥

दोहा—प्रगट उदर इक नखत इक, शील न होत स
मान जैसे काँटे घेरके, सम नहीं लखहु प्रमान ॥ ४ ॥

अर्थ—एकही पेटसे उत्पन्न हुए तथा एकी नक्षत्र में उत्पन्न
शीलमें समान नहीं होते, जैसे घेर के काँटे ॥ ४ ॥

निस्पृहोनाधिकारीस्यान्नाकामोमण्ड-
नप्रिय ॥ नाविदग्ध प्रियव्रुयात्स्पृष्टव-
क्तानवश्यकः ॥ ५ ॥

बोहा—निस्पृह अधिकारी नहीं, प्रिय अकाम श्रृंगार सतिवादी वचकम माहीं, प्रिय खलु भाषणहार ॥ ५ ॥

अर्थ—निस्पृह अधिकारी नहीं होता, कामना रहित श्रृंगार प्रिय नहीं होता, सुख प्रिय वचन नहीं कहता, तथा स्पष्ट वक्ता वचक नहीं होता ॥ ५ ॥

मृर्खाणां पण्डिताद्वेष्या अधनानां महाधना ॥ दुर्भगाणां च सुभगा कुलटानां कुलांगना ॥ ६ ॥

सोरठा—अधमिन अति धनवान, विधवन कहीं कुल ना रिगन मूढन हित विद्वान, विधवन कुल सिय द्वेष्य हैं ६

अर्थ—मूर्खों को वीरित द्वेष योग्य होते हैं, धनहीनो को महा धनी [द्वेष योग्य होते हैं] विधवाओं को सुभाग्यवती तथा व्यभिचारिणियों को कुल स्त्री ॥ ६ ॥

आलस्योपगता विद्या परहस्ते गतधनं ॥ अल्पबीजं हतक्षेत्रं हतसैन्यमनायक ॥ ७ ॥

सोरठा—पर कर गत धन नास, सैन्य विना सरदार हत आलस विद्या नास, अल्प बीजते क्षेत्र कृषि ॥ ७ ॥

अर्थ—वराये हस्त में जाने स घन, तथा आलस्य से विषा
नष्ट होती है, थोड़ा बीज बोम स खेत नष्ट होता है । तथा स्वामि
रहित सेना नष्ट होती है ॥ ७ ॥

अभ्यासाद्धार्यतेविद्याकुलंशीलेनधार्य
ते ॥ गुणेनजायतेत्वार्य कोपोनेत्रेणगम्य
ते ॥ ८ ॥

दोहा—कुल हो धारण शीळसे, नैनन क्रोध कखात ।
विद्या लह अभ्यास सन, गुण सन श्रेष्ठ जनात ॥ ८ ॥

अर्थ—अभ्यास स विद्या धारण की जाती है, शील से कुल
धारण किया जाता है, भेद पुरुष गुण स जाना जाता है, तथा
क्रोध नेत्रोंसे जाना जाता है ॥ ८ ॥

वित्तेनरक्ष्यतेधर्मोविद्यायोगेनरक्ष्यते ॥
मृदुनारक्ष्यतेमृप सत्त्वियारक्ष्यतेगृह ॥

दोहा—विद्या रक्षित योगसे, मृदु ते रक्षमुयाह । धन
ते रक्षित धर्म अरु, गृह रक्षति शुभ बाह ॥ ९ ॥

अर्थ—धर्म धन से रक्षित होता है, विषा योगसे रक्षित होती है । राजा केमलता से रक्षित होता है, तथा शुभ स्त्री से घर रक्षित होता है ॥ ९ ॥

अन्यथावेदपाण्डित्यशास्त्रमाचारमन्य
था ॥ अन्यथायद्वदन्नशांतलोका क्लिशं
तिचान्यथा ॥ १० ॥

दोहा—वृथा शास्त्र आचार करि, वृथा प्रगटि श्रुति अर्थ
शांत जनम कहि कटुवृथा, नर दुख पावत व्यर्थ १०

अर्थ—वेद की पंडितई वृथा प्रकाश करने से, शास्त्र को
तथा आचार को व्यर्थ करने से, तथा शांत को कटु बचन
कहने वाले लोग वृथा कष्ट भागते हैं ॥ १० ॥

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनं
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशि
नी ॥ ११ ॥

दोहा—दुर्गति नाशक शील अरु, दरत दारिद्र्य नाशक
भक्ति करत भय नाश अरु, मति नाशक अज्ञान ११ ॥

अर्थ—दान दरिद्रता का नाश करता है, धील दुर्गति का नाश करता है। पुद्धि अज्ञान का नाश करती है, तथा भक्ति ममका नाश करती है ॥ ११ ॥

नास्तिकामसमो व्याधिर्नास्तिमोहस
मोरिषु ॥ नास्ति कोपसमो वान्हि ना
स्ति ज्ञानात्परसुखम् ॥ १२ ॥

दोहा—काम समान न व्याधि अरु, शत्रु न मोह समान
कोप समान न अनल अरु, सुख न ज्ञान वर ज्ञान १२

अर्थ—कामके समान व्याधि नहीं है, मोह के समान शत्रु नहीं है। कोप के समान अग्नि नहीं है, दान में अधिक सुख नहीं है ॥ १२ ॥

जन्ममृत्युहियात्येको भुनक्त्येक शुभा
शुभम् ॥ नरकेषुपतत्येक एकोयातिपरां
गतिम् ॥ १३ ॥

दोहा—जनम मरण इकहीकहत, एक बहत पर घाम।
एकहि मोगत नरक इक भोग शुभाशुभ काम ॥ १३ ॥

अर्थ-निश्चयही अकेला जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है, तथा अकेला ही शुभा शुभ को भोगता है, अकेलाही नरक को प्राप्त होता है, अकेलाही परम गति को प्राप्त होता है ॥ १३

तृणब्रह्मविद स्वर्गस्तृणशूरस्यजीवित
म् ॥ जिताक्षस्यतृणन्नारीनिस्पृहस्यतृ
णं जगत् ॥ १४ ॥

दोहा-तृणसमजीवन भटन कर, शानिन तृणसुरधामे
निस्पृह जन्म हित जगत् तृण जितद्विनि तृणवाम १४

अर्थ-ब्रह्मज्ञानीको स्वर्ग तृण के समान है, शूर को जीवित
तिनका के समान है, जितश्रिय को नारी तिनका के समान है,
तथा निस्पृहको जगत् तिनका के समान है ॥ १४ ॥

विद्यामित्रंप्रवासेपुमार्यामित्रगृहेषुच ॥
व्याधितस्यौषधमित्रधर्मोमित्रंमृतस्य-
च ॥ १५ ॥

सार-विद्याभीत विदेश मौहि करु धर्म मृतक हितकारी
मित्र औषधी रोग मौहि करु भीत भयम महुँ नारी १५

अर्थ—बिषा परदेश में मित्र है, तथा घर में स्त्री मित्र है, रोगकी ओषधी मित्र है, और मृतक का धर्म मित्र है ॥ १५ ॥

वृथावृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम् ॥

वृथा दानधनाढ्येषु वृथा दीपो दिवापि च

दोहा—तृप्त भोजन व्यर्थ अरु, सागर सरसा व्यर्थ दिवस मध्य दीपक वृथा, धनिन रात बिन अर्थ ॥ १६ ॥

अर्थ—वर्षा समुद्र में व्यर्थ है, तृप्त को भोजन देना व्यर्थ है धनियों को दान देना व्यर्थ है, तथा दिन में दिया जलाना व्यर्थ है ॥ १६ ॥

नास्ति मेघ समतोयनास्ति चात्मसमब

लम् ॥ नास्ति चक्षु समतेजो नास्ति धा

न्यसमं प्रियम् ॥ १७ ॥

दोहा—मेघ समान न बारि अरु, नहिं बरु आत्म समान चक्षु समान न तेज है, अन्न सरिस नहिं आन १७

अर्थ—मेघ की समान जल नहीं है । और आत्मबलक समान बरु नहीं है । अस्ति व समान सज नहीं है, और अन्न की समान प्रिय नहीं है ॥ १७ ॥

अधनाधनमिच्छन्तिवाचंचैवचतुष्पदा
मानवाःस्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्तिदे
वताः ॥ १८

दोहा—निरधन चाहत धन तथा, नर गन चाहत स्वर्ग।
चतुष्पाद वाचा सहस्र, सुर चाहत अपवर्ग ॥ १८ ॥

अर्थ—निर्धनी धनकी इच्छा करते हैं, चतुष्पद वाणी की
इच्छा करते हैं। यदुष्य स्वर्ग की इच्छा करते हैं, देवता
मोक्ष की इच्छा करते हैं ॥ १८ ॥

सत्येनधार्यतेपृथ्वीसत्येनतपतेरवि ॥
सत्येनवातिवायुश्चसर्वसत्येप्रतिष्ठित १९

दोहा—भरासत्य बल है धरी, रवितप सत्यअवार।
वायु बहत बल सत्य अरु, थित सब सत्यअधार १९।

अर्थ—सत्य से भूमि धारण की जाती है, सूर्य से सूर्य तपते हैं।
और सत्य से वायु बहती है, तथा सत्य से सबही स्थित हैं १९।

चलालक्ष्मीश्चला. प्राणाश्चलेजीवितर्म
दिरे ॥ चलाचलेचससारे धर्मएकोहिनि
श्चल. ॥ २० ॥

दोहा—बंचल लक्ष्मी घाम अरु, बल जीवन अरु प्रान
निश्चल केवल धर्म यहि, घर अरु अघर अहान । २० ।

अर्थ—लक्ष्मी बंचल है, प्राण भी बल है । जीवन तथा घर
बचल है ॥ और बराबर इस संसार में एक धर्म ही
निश्चय है ॥ २० ॥

नराणांन।पितोधूर्त्त पक्षिणाश्चैववायस॥
चतुष्पदांशृगालस्तुस्त्रीणांघूर्त्ताचमालि
नी ५ २१ ॥

दोहा—शठ चौपदम शृगाल अरु, नाई नर बिच नीच
काग धूर्त्त पक्षिण अघम, माळिनी सिय गम बीच ॥ २१ ॥

अर्थ—चतुष्पदों में नाई धूर्त्त है, तथा पक्षियों में कौआ, तथा
चौपायों में शृगाल, और नारियों में माळिनी ॥ २१ ॥

जनिताचोपनेताच यस्तुविद्याप्रयच्छ
ति ॥ अन्नदाताभयत्राता पठ्चैतेपितर
स्मृताः ॥ २२ ॥

(छद्) अमह कर्ता सनयनादिक, निज पितु भय रत्न
 पार । कह आत यह पाँच पिता हैं, जो विषा दास्तार ॥ २२ ॥

अर्थ—उत्पन्न करने वाला, और सनयनादि संस्कार करने
 वाला, तथा जो विषा देता है । अमहदाता तथा कष्ट से बचा
 नेवाला यह पाँचों पिता कहे गये हैं ॥ २२ ॥

राजपत्नीगुरो पत्नीमित्रपत्नीतथैवच ॥
 पत्नीमातास्वमाताचपञ्चैतामातर.
 स्मृता ॥ २३ ॥

दोहा—पाँच कही हैं मातु यह, मित्र नारि गुरु बाल
 तिय माता निज मातु अरु इहि विधि तिय मरपाळ २३

अर्थ—राजा की स्त्री गुरु की स्त्री इसी प्रकार मित्र की
 स्त्री सास तथा अपनी माता यह पाँच माता कही गई हैं ॥ २३ ॥

इति श्री शाणक्यनीनौ शिवदास षोडश सूत्र भाषा

टीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठमोऽध्यायः प्राक्तन ॥ ६ ॥

श्रुत्वाधर्मं विजानाति श्रुत्वात्यजति
 दुर्मतिम् ॥ श्रुत्वाज्ञानं मवाप्नोति श्रु-
 त्वामोक्षं मवाप्नुयात् ॥ १ ॥

दोहा—सुनि कै जानत धर्म अरु, सुनि कै पावत ज्ञान
सुनि ही कै त्यागत कुमति, सुनिपावत निर्वान ॥ १ ॥

अर्थ—शास्त्रादि से सुनकर ही धर्म को जानता है, सुनकर ही कुमति को त्यागता है । सुनकर ही ज्ञानको पाता है, सुनकर ही मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

काक पक्षिषु चांडाल पशुनां चैव कुक्कुर
पापो मुनीनां चांडाल सर्वेषां चैव निंदक

दोहा—काग पक्षिगन मोंहिं शठ, श्वान पशुन गन बीव
मुनिगन मों पापी अथम, सब मों निंदक नीच ॥ २ ॥

अर्थ—पशुओं में कुक्कुर तथा पक्षियों में कौमा चांडाल है । मुनियों में पापी तथा सब में चांडाल निंदक है ॥ २ ॥

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यताम्रमम्लेन
शुद्ध्यति ॥ रजसा शुद्ध्यते नारीनदी
वेंगेन शुद्ध्यति ॥ ॥ ३ ॥

सोरठा—लिय हो रज से शुद्ध, कौंस शुद्ध हो भस्म तो।
सरित बेगसन शुद्ध, ताब खटाई कहि विमल ॥ ३ ॥

अर्थ—काष्ठ भस्म से शुद्ध होता है; ताँबा लट्कार से शुद्ध होता है। स्त्री रजस्वला होने पर शुद्ध होती है। तथा नदी वेग से शुद्ध होती है ॥ ३ ॥

अमन् सपूज्यते राजा अमन्सपूज्यते
द्विज ॥ अमन् सपूज्यते योगी स्त्री
अमन्ती विनश्यति ॥ ४ ॥

दोहा—द्विज पूजित हो अमण ते, पूज्य अमण नर पाक
योगी पूजित अमण ते, नष्ट अमण ते बाक ॥ ४ ॥

अर्थ—विचरने वाला राजा पूजित होता है, अमण शीक
ब्राह्मण पूजित होता है। अमण शीक योगी पूजित होता
है, [परन्तु] अमण शीक नारी नष्ट होती है ॥ ४ ॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणियस्यार्थास्त-
स्य बान्धवा ॥ यस्यार्था. सपुमाँल्लोके
यस्यार्थ सच पण्डित. ॥ ५ ॥

दोहा—जिहिके धन तिहि मित्र करु जिहि धन सोइ महा
न बौधव ताके जासु धन, जिहि धन सो विद्वान् ॥ ५ ॥

अर्थ—जिनके घन है, तिसके पिण्ड हैं, जिसके घन है
ससके बंधु है, जिसके घन है वही लोक में श्रेष्ठ पुरुष है
जिसके घन है, वही धर्मित, है ॥ ५ ॥

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोपि तादृ-
शः ॥ सहायास्तादृशा एव यादृशी
भवितव्यता ॥ ६ ॥

दोहा—तैसहि हो उद्योग अरु, तैसहि बुद्धि उद्योत ।
होत सहायक ताहि विधि, भावी जिहि विधि होत ॥ ६ ॥

अर्थ—वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है, वैसाही उद्योग तथा
वैसे ही सहायक हो जात हैं । जैसी भवितव्यता होती
है ॥ ६ ॥

काल पचति भूतानि काल सहरते प्रजा
काल सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरति-
क्रम ॥ ७ ॥

दोहा—प्रजन मशावत काल अरु, मक्षम प्राणिन काल
जागत काल सुसुप्ति में हैं, निश्चय दुस्तर काल ॥ ७ ॥

अर्थ—कालही प्राणियों को खाता है। कालही प्रजाओं का संहार करता है, सोते में कालही जागता है, निधवर्षी काल छलंघन के अयोग्य है-॥ ७ ॥

न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नै-
व पश्यति ॥ मदोन्मत्ता न पश्यति
अर्थी दोष न पश्यति ॥ ८ ॥

दोहा—मद मतवार न देखत अरु, देखत नाहिं कौमान्ध
अर्थी दोष न देखत, नहीं देखत नहीं जन्मान्ध ॥ ८ ॥

अर्थ—मन्म का अंधा नहीं देखता, कामोंध नहीं देखता,
तथा मदसे मतवाला नहीं देखता, और अर्थी दोष को नहीं
देखता ॥ ८ ॥

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वय तत्फलम्
श्रुते ॥ स्वय अमति संसारे स्वय त-
स्माद्विमुच्यते ॥ ९ ॥

दोहा—करत आपही आत्म कृत, भोगत तिहि फल आप
आप अमत संसार महीं, मुक्त होत जग आप ॥ ९ ॥

अर्थ—आत्मा आपही कर्म करता है, आपही सबका फल भोगता है। आपही संसार में भ्रमरण करता है, तथा आप ही सबसे (संसार से) मुक्त होता है ॥ ९ ॥

राजा राष्ट्रकृत पापं राक्ष पापं पुरोहितः
॥ भर्ता च श्रीकृत पापं शिष्य पापं
गुरुस्तथा ॥ १० ॥

दोहा—उपरोहित नृप पापकह, प्रजा पाप भूपाक ।
शिष्य पाप पावत गुरु पुरुष पाप कह बाक ॥ १० ॥

अर्थ—प्रजाके किये पाप को राजा, राजा के पाप को पुरोहित तथा श्री के किये पाप को पति, और शिष्य के किये पाप को गुरु भोगता है ॥ १० ॥

ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्यामि-
चारिणी ॥ भार्या रूपवती शत्रुपुत्र
शत्रुरपण्डितः ॥ ११ ॥

दोहा—ऋणकर्ता पितु शत्रु मरु रिपु माताव्य मिशारि ।
पुत्र अयं दित शत्रु है, रूपवती अरि नारि ॥ ११ ॥

अर्थ—मरण करने वाला पिता शत्रु है, और अभिचारिणी माता शत्रु है । रूपवती स्त्री शत्रु है, तथा सुखें दुष्ट शत्रु हैं ॥ ११ ॥

लुब्धमर्थेन गृहीयात् स्तब्धं मजलि
कर्मणा ॥ सुखं छंदानुवृत्त्या च यथार्थं
त्वेन पण्डितम् ॥ १२ ॥

दोहा—लोभहि धन ते वश करहि, सधिनय सह अमि-
मान । शठहि तासु अनुसार चकि सत्यहितें
विद्वान् ॥ १२ ॥

अर्थ—लोभी को धन से वश करे, अमिमानी को हाथ जोड़कर सुख को उसके अनुसार चलने से, तथा पण्डित को सत्यता से (वश करे] ॥ १२ ॥

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं वरं न मि-
त्रं न कुमित्रमित्रम् ॥ वरं न शिष्यो न-
कुशिष्यशिष्यो वरं न दारा नकु-
दारदारा ॥ १३ ॥

छंद-भीति न कर न कुमित्र मित्र घर नृप नहीं घर नहीं कु
नृपसुवाल शिष्य नहीं कर शिष्य कु शिष्यन, नारि न भल
नहीं बाल कुबाल ॥ १३ ॥

अर्थ-राज्य का न होना अच्छा है; पर दुष्ट राजा का
राज्य भला नहीं, मित्र न होना अच्छा है पर कुमित्र का
मित्र होना भला नहीं ॥ शिष्य बिना अच्छा है पर कुशिष्य
का शिष्य होना भला नहीं, स्त्री महोना अच्छा है पर लराव
स्त्री का स्त्री होना अच्छा नहीं ॥ १३ ॥

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं कुमित्र-
मित्रेण कुतोहि निर्वृति ॥ कुदारदारै-
श्व कुतो गृहे रति कुशिष्यमध्यपयत.
कुतो यशः ॥ १४ ॥

छंद राज कुराज प्रजान कहा सुख शोँति कहा शठ
मित्रहि पाय । नारि कुनारि पाय गृह रति कह यश
होत कुशिष्य पढाय ॥ १४ ॥

अर्थ-दुष्ट राजाके राज्य में प्रजाओं का सुख नहीं १
कुमित्र के मित्र होने से सुख नहीं १ नार कुस्त्री व स्त्री होनेसे
परम प्रीति नहीं १ तथा कुशिष्यके पढ़ाने में यश कैसे हो
सका है ॥ १४ ॥

सिंहादेकं बकादेक शिक्षेच्चत्वारिकृक्कु
टात् ॥ वायसात्पच शिक्षिच्च षट् शुन
स्त्रीणिगर्दमात् ॥ १५ ॥

(सार) सीखहि गर्दभ गुण त्रयषक इक, कुक्कुट सन
गुणचारी । इक केहूरि षट् खाम काग सन सीखहि
मुख कामारी ॥ १५ ॥

अर्थ—सिंह से एक, बगले से एक, तथा सुर्मा से चार गुण
सीखने चाहिये, कुक्कुट से छह गुण, तथा कोर से पाँच गुण और
गर्दभ से तीन गुण सीखना चाहिये ॥ १५ ॥

प्रभृतं कार्यमल्पं वा यत्नर कर्तुमिच्छ-
ति ॥ सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेक प्रच
क्षते ॥ १६ ॥

(सार) कष्टुषा कार्य महान करम नर, इच्छा धारहि
जोई ॥ सबप्रकार करिखो यह गुण इक, सिखहि सिंह
सन सोई ॥ १६ ॥

अर्थ—बड़े या छोटे कार्य को जो मनुष्य करने की इच्छा करता है, सब प्रकार के प्रयत्न से उसको करना यह एक सिद्धि सेसीलना ॥ १६ ॥

इन्द्रियाणि च संन्यय ब्रह्मवत्पण्डितो
नर ॥ देशकालंवलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि
साधयेत् ॥ १७ ॥

बोहा—सबको इन्द्रिय—ब्रह्मकरि, देश कालवलं जान ।
सकल काज पूरण करहि, पण्डित नर मतिमान ॥ १७ ॥

अर्थ—पण्डित मनुष्य इन्द्रियों को बगले की समान रोककर,
देश काल तथा बल जानकर सब कार्यों को सिद्ध करे ॥ १७ ॥
प्रत्युत्थान च युष्मं च सविभागं च व-
न्धुषु ॥ स्वयमाक्रम्य भोग च शिक्षेच्च-
त्वारि क्लृप्तात् ॥ १८ ॥

(सार) जगत् समय पर बंधु भाग सम, देव सज-
गता रारि करि आक्रमण स्वतः भोग्य गुन, सीखहि
क्लृप्तचारी ॥ १८ ॥

दोहा—बीस गुणन इन आचरत, मनुज यथाविधि
जौन सकल कार्य महुँ होत है, अजय भविष्यत तीन २१

अर्थ—जो मनुष्य इन बीस गुणों को आचरण करेगा,
वह भविष्यत में अजेय होगा ॥ २२ ॥

इति श्री बाणक्य प्रीतो शिष्यास्त पंडित कृत भाषा

टीकायां पद्योऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थनाश मनस्तापं गृहिणीचरितानि
च ॥ नीचवाक्य चापमानं मतिमान्न
प्रकाशयेत् ॥ १ ॥

दोहा—नारि चरित धन नाश अरु, नीच वचन अपमान
मन को ताप प्रकाश जनि, करहि पुरुष मतिमान ॥ १ ॥

अर्थ—धनका नाश, मन का ताप, स्त्री के चरित्र और
नीच पुरुषों के वचन, और अपमान को बुद्धिमान न प्रका
शित करे ॥ १ ॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासग्रहणेषु च ॥
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी
भवेत् ॥ २ ॥

दोहा—होत सुखी विद्या ग्रहण, अरु अहार व्यवहार ।
लेन देन धन धान्य महीं, लज्जा त्यागनहार ॥ २ ॥

अर्थ—धन धान्य के प्रयोग में विद्याके ग्रहण करने में, और
आहार में, तथा व्यवहार में लज्जा त्यागने वाला सुखी
होता है ॥ २ ॥

सतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शांतिरेव
च ॥ न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च
धावताम् ॥ ३ ॥

दोहा—सुखन सतोषामृत गरन होत शांति सुख जौन
अमण हार इस उत कहत, धन कोलुप महीं सौन ३॥

अर्थ—संतोष रूपी अमृत से तृप्त हुओं को, जो सुख तथा
शांति है । वह इधर उधर दौड़ने वाले धनके लोभियोंको
महीं होता ॥ ३ ॥

संतोषस्त्रिषु कर्तव्यस्वदारं भोजने घने॥
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥ ४ ॥

दोहा—तोप करहु इन तीन घन भोजन निज तिय मौहि
दान पठन जप इन, अय मई कीजिये मौहि ॥ ४ ॥

अर्थ—अपनी स्त्री में, भोजन में, घन में, इन तीन में संतोष
करना चाहिये, पढ़ने में जप और दान इन तीन में न करना
चाहिये ॥ ४ ॥

विप्रयोर्विप्रवह्वोश्च दपत्यो स्वामिभृ-
त्ययो ॥ अन्तरेण न गतव्यं हरस्य वृ-
षभस्य च ॥ ५ ॥

दोहा—दुई ब्राह्मण द्विज अनल बिच, अरु हल बिच
शासिमाल । बहिय जान नहि मृत्य प्रभु, मध्य मध्य
पति बाल ॥ ५ ॥

अर्थ—दो ब्राह्मणोंके, ब्राह्मण तथा अग्नि के स्त्री तथा पुत्र

ये स्वामि तथा सेवक के; शंकर के तथा गृप पे बीच में म
माना चाहिये ॥ ५ ॥

पादाभ्या न स्पृशेदग्निं गुरु ब्राह्मणमेव
च ॥ नैव गां न कुमारीं च न वृद्ध न
शिशु तथा ॥ ६ ॥

दोहा—चरणन ते परसे नहि, अनल वृद्ध द्विजराय ।
नहि कुमारे नहि शिशु तथा, नहि गुरु अरु नहि
गाय ॥ ६ ॥

अर्थ—अग्नि को, गुरु को, तथा ब्राह्मण को चरणों से स्पर्श
न करे । तथा न गायको, न कुमारी को, न वृद्ध, न शिशु
को ॥ ६ ॥

शकट पचहस्तेन दशहस्तेन वाजिनम्
हास्तिन तु सहस्रेण देशत्यागेन दुर्जनम्
॥ ७ ॥

दोहा—पाँच हाथ ते सकट अरु, द्वाधिहि दाय दजार ।
तजै अश्व दश हाथ ते अरु ताजि देश गँवार ॥ ७ ॥

अर्थ-पौष हाथसे गाढीको दश हाथ से चोदे को, हजार हाथसे हाथीको, तथा दुर्जन को देश त्याग करके त्यागा जाहिसे ॥ ७ ॥

हस्ती ह्यंकुशमात्रेण वाजी हस्तेन ता-
दृश्यते ॥ शृगी लघुहस्तेन स्वप्नहस्तेन
दुर्जनः ॥ ८ ॥

अर्थ-गाय अंकुश से बाजि हस्त से, निम्नप बघ से अर्थ।
शृगी लघुहस्त से, आसिकर, दंडित कर्तो अर्थ ॥ ८ ॥
अर्थ-निम्नयही हाथी अंकुशमात्र से, चोडा हाथ से, सी
मबासे लघुहस्ती हाथसे, तथा दुर्जन स्वप्न घारी हाथ से
दंडित किया जाता है ॥ ८ ॥

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनग-
र्जिते ॥ साधव परसपत्नी खला परवि
पात्तिषु ॥ ९ ॥

दोहा-धन गर्जन सुनि मोर अरु पर घन निरखि
सुजान । तुष्ट होत द्विज असन लहि, पर दुख तुष्ट
अजान ॥ ९ ॥

अर्थ—वाङ्मण भोजनसे, तथा मोर बादल गरजनेसे, साधु
जन परसपति देखकर, तथा दुष्ट वृक्षरेकी विपति देखकर
सह्य होते हैं ॥ ९ ॥

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्वलम्
आत्मतुल्यबल शत्रुं विनयेन बलेन
वा ॥ १० ॥

दोहा—बल हीनन प्रतिकूलता, अनुकूलता महान ।
बल ते अथवा विनय ते, वश करि करहि समान ॥ १० ॥

अर्थ—अनुकूलतासे बलीनो, प्रतिकूलतासे दुर्वलनो, अपनी
बराबरबाले शत्रुनो, विनय या बलसे वश करे ॥ १० ॥

बाहुवीर्यबल राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मविद्वली
रूपयोवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम्

दोहा—ब्रह्मविज्ञ द्विजवर बली, बाहु वीर्य बलभूष ।
बल अति उत्तम मधुरता, यौवन तियगम रूप ॥ ११ ॥

अर्थ—सुजाओंका पराक्रम राजाका बल है, जिसका जफ
नेवाला दासजबली होता है। रूप, यौवन तथा मधुरता जि
पोंकी परमोच्चम बल है ॥ ११ ॥

नात्यन्त सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वन
स्थलीम् ॥ छिद्यति सरलास्तत्र कुञ्ज
म्विष्टंति पादपा ॥ १२ ॥

बोहा—होन न चाहिये अति सरल, बलिवेखहु बनठाम
सरल वृक्ष कटिजात तित, वने रहत तरुवाम ॥ १२ ॥

अर्थ—अत्यंत सीधे मही हाना चाहिये बनस्पतीको जाकर
देसो तहाँ सीधे वृक्षकट जात है, वने वृक्ष स्थिर रहते हैं ॥ १२ ॥

यत्रोदकं तत्र वसंति हसास्तथैव शुष्कं
परिवर्जयति ॥ न ह सत्तुल्येन नरेण
भाव्य पुनस्त्यजत पुनराश्रयन्त ॥ १३ ॥

(उद) जित जल वसत हंस तित इदि विधि, सूखमहं तजि
वत । हंस समान न हान चाहिये नर, तजि पुनि आश्रय
वत ॥ १३ ॥

अर्थ-जहाँ जड़ है, तहाँ हंस निवास करते हैं, इसी भाँति
सुखानेपर त्याग देते हैं। हंसकी समान मनुष्यको न होना
पारिजे; फिर त्याग देते हैं, फिर आश्रय लेते हैं ॥ १३ ॥

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि
रक्षणम् ॥ तडागोदगस्थानां परिस्रव
इवांमसाम् ॥ १४ ॥

बोहा-सम्पादित धनको अहहि, रक्षण केवल जान।
उदर सरोवर जल सुफल, जिमिषाहर थल जान ॥ १४ ॥

अर्थ-सम्पादन (एकत्र) किये धनका त्याग करनाही रक्षा
है। जैसे सरोवरके मध्य स्थित जलका बाहर सेप्रादिमें निक-
लना सुफल है ॥ १४ ॥

यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्याथस्तस्य
बांधवा ॥ यस्यार्थं स पुमाँल्लोके य
स्यार्थं स च जीवति ॥ १५ ॥

सार-जिहिके धन जग मति तासुके, जिहिधन बां-
धव ताके जीवित सोधन अहहि जासु अरु नर जग
वह धन जाके ॥ १५ ॥

अर्थ—जिसके घन है, उसके मित्र है। जिसके घन है, उस के बंधु है, जिसके घन है, वह अगतमें पुरुष है। जिसके घन है, महीजीता है ॥ १५ ॥

स्वर्गस्थितानामिहजीवल्लोके चत्वारि
चिन्हानि वसति देहे ॥ दानप्रसंगो मु-
धुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणंच

(छंद) इहिवग मैं आये स्वर्गमें तन, चिन्ह होते हैं चार ।
द्विजन वृत्ति पुर सेवदान अरु, कोमल वचन सदा ॥ १६ ॥

अर्थ—स्वर्गमें निवास करनेवालोंके इस जीवलोकमें आनेपर शरीरमें चार चिन्ह होते हैं, दानका प्रसंग, मधुर वाणी, तथा देवताओंकी पूजा और ब्राह्मणोंकी वृत्ति करना ॥ १६ ॥

अत्यन्तकोप कटुका च वाणी दरिद्रता
च स्वजनेषु वैर ॥ नीचप्रसंगः कुलहीन
सेवा चिन्हानिदेहे नरकस्थितानाम् १७

(छंद) स्वजन मोह कटुवचन कोप अति, दरिद्रता जम
नीच घनेह । सेवा करिबो हीन वंशकी, चिन्ह वसत यह नर
किन देह ॥ १७ ॥

मर्ष-भर्ष्यत कोप तथा कटुबानी, निर्बनता, तथा अपने
कटुविषोंसे बैर, नीचकी संगति तथा कुलहीनकी सेवा यह
चिन्ह नरकमें रहनेवालोंके हैं ॥ १७ ॥

गम्यते यदि मृगेन्द्रमदिरंलभ्यतेकरिक
पोलमौक्तिकम् ॥ जबुकालयगते च प्रा
प्यते वत्सपुच्छस्वरचर्मखण्डनम् ॥ १८ ॥

(छंद) मोती मिलत कपोल गजन जो के हरि मंदिर जावे
जम्बुक यह स्वर चर्म भाग भर पूँछ वत्सकी पावे ॥ १८ ॥

मर्ष-जो सिंहके मंदिरमें जाय, तो हाथीके गण्डस्थलके
मोती मिलते हैं । और सिंघारे स्थानमें जानेसे बछड़ेकी पूँछ
तथा गधके चर्मका टुकड़ा मिलता है ॥ १८ ॥

शून्यपुच्छमिवव्यर्थ जीवित विद्यया
विना ॥ न गुह्यगोपने शक्त न च दशनि
वारणे ॥ १९ ॥

विदोहा-विद्या बिना जीवन अपहि, भ्रान पूँछ सम व्यर्थ ।

गुह्य शरीर न ढँकि सकत, दंश हनन न समर्थ ॥ १९ ॥

मर्ष-विषाके बिना कुत्तेकी पूँछके सपान जीवन व्यर्थ है

ओत प्रसन्न भंग इकमेव, नहोस निवारण करमेवें समर्थ है ॥ १९ ॥

वाचां शौचं च मनसः शौचमिन्द्रिय
तिग्रहः ॥ सर्वभूतदया शौचमेतच्छौचं
परार्थिनाम् ॥ २० ॥

(अर्थ) परमार्थिन कर शौच गृहीत यह, दया करव सब
प्राणी । शौच हृदय भरु शस्त्रिय गमदम, तथा शौचपन
बानी ॥ २० ॥

अर्थ—यह परमार्थियोंका शौच है । प्राणीका शौच मनका
शौच इंद्रियोंका अर्थ, तथा सब प्राणिपोंपर दया ॥ २० ॥

पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि
घृतम् ॥ इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं
विवेकतः ॥ २१ ॥

(अर्थ) पुष्प गन्ध तिल तैल दुग्ध घृत, इसु रहत रस जैसे ।
अनरु वाठ सम तन्मदै आत्म, ससह ज्ञानते जैसे ॥ २१ ॥

अर्थ—जैसे पुष्पमें गन्ध, तिलमें तैल काष्ठमें अग्नि, दूधमें घृत, तथा
इक्षुमें गुड रहता है । तैसे ज्ञान सेवेइमें आत्माको देखो ॥ २१ ॥

इति श्री वाचस्पत्य मीश्वरी शिष्यास पण्डित्य कृत भाषा

टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

। अथाष्टमोऽध्यायः ।

अधमा धनमिच्छन्ति धन मानं च
मध्यमा. ॥ उत्तमा मानमिच्छन्ति मा
नो हि महतां धनम् ॥ १ ॥

दोहा—चाहत हैं धन अधम नर, मध्यम नर चाह मान ।
उत्तम चाहत मान अरु, धनही मान महान ॥ १ ॥

अर्थ—अधम पुरुष धनकी इच्छा करते हैं । तथा मध्यम
धनकी तथा मानकी इच्छा करते हैं ॥ उत्तम पुरुष मानकी
इच्छा करते हैं । क्योंकि मान बड़े पुरुषोंका धन है ॥ १ ॥

इक्षूनप पयो मूल ताम्बूल फलमौषधम् ॥
मक्षयित्वापि कर्तव्या स्नानदानादिका
क्रिया ॥ २ ॥

दोहा—ऊख मूल फलघूघ जल, तथा औषधी पान ।
इसके भोजन कियहु पर, उचित दान अस्मान ॥ २ ॥
ऊख, जल, दूध, मूल, पान, तथा फल, औषधि, खाकर भी
स्नानदानादिक क्रिया करना चाहिये ॥ २ ॥

दीपो भक्षयते ध्वांत कज्जल च प्रसूयते
 यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी
 प्रजा ॥ ३ ॥

बोधा—तम कहें भक्षत दीप और, प्रगटत कज्जल आदि
 प्रजा होती तिमिही प्रगट, अन्न नित्य जिमि खादि ॥

अर्थ—दीपक अंधकारको खाता है तथा कज्जलको प्रगट
 करता है, वैसे नित्य अन्न खाया जाता है वही प्रजा उत्पन्न
 होती है ॥ ३ ॥

वित्तं देहि गुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्र
 देहि क्वचित् प्राप्तं वारिनिधेर्जल घन-
 मुखे माधुर्ययुक्तं सदा जीवनं स्थावरं-
 जगमांश्च सकलान् संजीव्य भूमदल-
 भूयः पश्यति देव कोटिगुणितं गच्छ-
 तमम्भोनिधिम् ॥ ४ ॥

[कवित्त] दीजै घन गुमिन अनत न रूचित दीजै,
 वारि निधि वारि घन मुख में समाय कै ।
 कहत मधुरता निरन्तर ही वारि वही,
 सकल चराचर प्रजान को जिवाय कै ॥
 सकल जियावत महान भूमि मंडल को,
 ताने पुनि कोटि गुन और जल काय कै ।
 एहो मति विज्ञ देव पुनि हमि देख्यो जात,
 मिलत महान वारि निधि माँहि जाय कै ॥४॥

अर्थ-दे प्रसिद्धान । गुणियोंको घन दो, अम्यत्र न दव,
 समुद्रका जल मयके मुखमें प्राप्त होनेसे निरन्तर मधुरता युक्त
 होता है । और वही प्रकृत सम्पूर्ण चराचर जीवोंको जिवाकर,
 मूर्पंडलको जिवाता हुआ है देव । फिर कोटि गुना होकर सब
 सागरमें जाता है ऐसा दसा है ॥ ४ ॥

चांडालाना सहस्रैश्च सूरिभिस्तत्त्वदर्शि
 भि ॥ एको हि यवन प्रोक्तो न नीचो
 यवनात्पर ॥ ५ ॥

दोहा—अधिक सहस्र चौंढाल ते, अवमी यवन महान ।
तत्त्व विद्वान् भाष्यो कविन, नीच न यवन समान ॥५॥

अर्थ—तत्त्वदर्शी कवियोंने सहस्र चौंढालोंसे भीष एक यवन
कहा है, यवनसे भीष दूसरा नहीं है ॥ ५ ॥

तैलाभ्यंगे चिताधूमे मैथुनेक्षौरकर्मणि
तावद्भवति चांडालो यावत्स्नानं न चा
चरेत् ॥ ६ ॥

(छंद) तेल लगाये चिताधूम से, क्षौर दिये रतिदान । तब
लगा रह चौंढाल भरत नहीं, अवसीं मनुज स्नान ॥ ६ ॥

अर्थ—तेल मलनेसे चिताकी धूम लगानेसे मैथुन करनेसे
क्षौर करानेसे सबतक मनुष्य चांडाल रहता है, अबतक स्नान
न करे ॥ ६ ॥

अर्जीर्णे भेषज वारि जीर्णे वारि बलप्रद
म् भोजने चामृत वारि भोजनांते
विषप्रदम् ॥ ७ ॥

सार—औषधि वारि अजोर्ण मौहिं अरु, असन अत
विषकारी भोजन समय अमिय है जल है, पचन
समय बलकारी ॥ ७ ॥

अर्थ—अधीर्णमें जल औषधि है, पचनेके समय बल
दायक है । भोजनके समय जल अमृत है, तथा भोजनके
पश्चात् भोजन विषके समान गुण करता है ॥ ७ ॥

हत ज्ञान क्रियाहीन हतश्चा ज्ञानतो
नर ॥ हत निर्णायक सैन्य स्त्रियो न
ष्टाह्यमर्तुका ॥ ८ ॥

(७६) नारीगन विन पति विनष्ट हैं, समुज नष्ट अज्ञान ।
नष्ट ज्ञान है क्रियाहीन अरु, हतदल बिना प्रपान ॥ ८ ॥

अर्थ—निष्प्राप्तहीन ज्ञान नष्ट है, और अज्ञानसे समुप्य नष्ट
है । बिना सेनापतिजी सेना नष्ट है, तथा पति विहीन स्त्रियों
मष्ट हो जाती हैं ॥ ८ ॥

वृद्धकाले मृता भार्या बधुहस्तगत ध-
नम् ॥ भोजन च पराधीन तिस्र पुसा
विहम्बना ॥ ९ ॥

बोहा—बंधु हस्त धन गत तथा, धृष्टकाष्ठ हत नारि ।
पराधीन भोजन अहर्हि, पुरुषर्हि अय दुस्वकारि ॥९॥

अर्थ—बृद्धकाष्ठमें मेरी हई स्त्री, बंधुभोके हाथमें गया दुम
धन, तथा परायेके आधीन भोजन, पुरुषको तीनों
विदम्बना है ॥ ९ ॥

अग्निहोत्रं विना वेदा न च दान विना
क्रिया ॥ न भावेन विना सिद्धिस्तस्मा
द्भावो हि कारणम् ॥ १० ॥

बोहा—अग्नि होत्र विन वेद अरु, नष्ट क्रिया विन दान ।
भाव विना नहि सिद्धि कछु, ताते भाव प्रधान ॥१०॥

अर्थ—अग्निहोत्रके विना वेद, और न क्रियाके विना दान,
यता भावके विना सिद्धि नहीं है, इस कारण भावही कारण
है ॥ १० ॥

काष्ठपाषाणधातूनां कृत्वा भावेन सेव-
नम् ॥ श्रद्धया च तथा सिद्धिस्तस्य वि-
ष्णो प्रसादत ॥ ११ ॥

दोहा—सेव करन मँहँ मुर्तिरषि, घातु काठ पाखान ।
श्रद्धाते तिमि सिद्धिलह, कृपा विष्णु भगवान ॥ ११ ॥

अर्थ—काष्ठ पाषाण घातुओंकी मुर्तिको बनाकर भावसे सेवा करनेमें भी श्रद्धासे वैसी सिद्धी विष्णुके प्रसादसे होती है ॥ ११ ॥

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृ-
ण्मये ॥ भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भा-
वो हि कारणम् ॥ १२ ॥

दोहा—काठ मौँहि नहि देव अरु, नाहि कचन न पखान
ताते कारण भावही, भाव मौँहि मगधाम ॥ १२ ॥

अर्थ—न ईश्वर काष्ठमें है, न पाषाणमें, न मृण्मये, निश्चयही
देवता भावमें विद्यमान है, इसीसे भावही कारण है ॥ १२ ॥

शान्तिवुल्य तपो नास्ति न सतोषात्पर
सुखम् ॥ न वृष्णाया परोव्याधिर्न च
धर्मो दयासम ॥ १३ ॥

दोहा—अधिक न सुख सतोष ते, सुख नहि शान्तिसमान
वृष्णाते नहि व्याधी अति, धर्म न दया समान ॥ १३ ॥

अर्थ—शान्तिके समान सुख नहीं है, संतोषसे अधिक सुख नहीं है। तृष्णसे अधिक व्याधि नहीं है। और दयासे समान धन नहीं ॥ १३ ॥

क्रोधो धैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी
नदी ॥ विद्या कामदुधा धेनु सतोषो
नन्दन वनम् ॥ १४ ॥

(छंद) क्रोधही है सम्राज तथा सरि, वैतरनी तृष्णाही ।
नन्दन वन संतोष अइहि अरु, कामधेनु विद्याही ॥ १४ ॥

अर्थ—क्रोधही सम्राज है, तृष्णाही वैतरनी नदी है। विद्याही कामधेनु गो है, संतोषही नन्दन वन है ॥ १४ ॥

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम्
सिद्धिर्भूषयते विद्या भोगा भूषयते धनम् ॥ १५ ॥

(छंद) गुणरूप भूषित करता, सिद्धिहि पाप विद्या शोभ ।
कुल वरत भूषित शील, अरुधन भोगसे सह शोभ ॥ १५ ॥

अर्थ—गुणरूपको भूषित करता है, शील कुलको भूषित करता है। सिद्धि विद्याको भूषित करती है, भोग धनको भूषित करता है ॥ १५ ॥

निर्गुणस्य हत रूपं दुःशीलस्य हत कु-
लम् ॥ असिद्धस्य हता विद्या अभोगेन
हत धनम् ॥ १६ ॥

बोधा—निर्गुण कर है रूप हत, हत कुशील परिवार ।
विद्या नष्ट असिद्धकी विना भोग धन छार ॥ १६ ॥
अर्थ—निर्गुणका रूप हत है, दुःशीलका कुल हत है, सिद्धि
रहित की विद्या हत है, विना भोगके धन हत है ॥ १६ ॥

शुद्ध भूमिगत तोय शुद्धा नारी पति-
व्रता ॥ शुचि श्रेमकरो राजा संतुष्टो ब्रा-
ह्मण शुचि ॥ १७ ॥

बोधा—धरा प्राप्त जल शुचि तथा, शुचि पतिव्रत रत
बाळ । शुद्ध विप्र संतोष घर, शुचि क्षेमी नरपाल ॥ १७ ॥
अर्थ—भूमिमें प्राप्त जल शुद्ध है, पतिव्रता स्त्री शुद्ध है ।
कल्याण वर्त्ता राजा शुद्ध है, संतोषी ब्राह्मण पवित्र है ॥ १७ ॥

असन्तुष्टा द्विजा नष्टा. संतुष्टाश्च मही-

मृतः ॥ सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्ज
 श्व कुलांगनाः ॥ १८ ॥

दोहा—असतोषधर नष्ट द्विज, सतोषी नरपाळ ।

गणिका नष्ट सलज्ज अरु, गत लज्जा कूळ बाळ ॥ १८ ॥

अर्थ—संतोषहीन आश्रय नष्ट है, तथा सतोषी राजा मह है,
 निर्लज्ज कुलस्त्री, तथा लज्जाबान गणिका नष्ट है ॥ १८ ॥ -

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहि-
 नाम् ॥ दुष्कुलं चापि विदुषो देवैरपि
 सुपूज्यते ॥ १९ ॥

दोहा—देहिन विद्या हीन के, का कुल भये महान ।

पूजा पावन सुरत सन, नीच वंश विद्वान् ॥ १९ ॥

अर्थ—देहधारियोंके विद्यासे हीन बड़े कुलसे क्या है विद्वान्
 मका दुष्कुलभी वेत्तामोक्षि पूजा जाता है ॥ १९ ॥

विद्वान् प्रशस्यते लोके विद्वान् सर्वत्र
 गौरवम् ॥ विद्यया लभते सर्वं विद्या
 सर्वत्र पूज्यते ॥ २० ॥

दोहा-विद्या पूजित ठाम सब, लहू खुब सब जग मान ।
विद्या ते सब मिलन है, पढित पूज्य जहान ॥ २० ॥

अर्थ-ससारमें पढित पूजित होता है, पढित सर्वत्र गौरव
पाता है, विद्या सब प्राप्त होता है, विद्या सब स्थानोंमें पूजी
जाती है ॥ २० ॥

रूपयौवनसपन्ना विशालकुलममवा. ॥
विद्याहीना न शोभते निर्गन्धा इव किं-
शुका. ॥ २१ ॥

(छंद) विद्या विन यौवन छवि युननर, सपने बंश महान ।
शोभा पावत नहिं गंध विन, देख पुष्प समान ॥ २२ ॥

अर्थ-रूप यौवनसे युक्त, बड़े कुलमें उत्पन्न हुए विपसो
हीन पुरुष, गंधि रहित दसूरे फूलसे समान शोभा नहीं
पान ॥ २१ ॥

,मांसमक्षे. सुरापानेर्मृत्वाश्वाक्षरवर्जितै. ॥
पशुमि पुरुषाकारेर्भाराक्रातास्ति मे-
दिनी ॥ २२ ॥

(छंद) सुरापान काली भस्म गरि, शठपक्ष भक्षण हर ।
पुरुषाकार पशुन से बसुषा, है अति संयुत भार ॥ २२ ॥

अर्थ—मौखि खानेवाले, सुरापान करनेवाले भस्म से ही
पूर्व पुरुषाकार पशुओंसे मिलिनी भारसे आक्रान्त है ॥ २२ ॥

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्र मंत्रहीनश्च ऋत्वि-
जः ॥ यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञ-
समो रिपुः ॥ २३ ॥

दोहा—अन्नहीन राज्यहि बहुत दान हीन यजमान ।
मंत्रहीन ऋत्विजन कहैं, रिपु न यज्ञ सम मान ॥ २३ ॥

अर्थ—अन्नहीन राज्यको, सदा मंत्रहीन ऋत्विजको दान-
हीन यजमानको नष्ट करता है । यज्ञके समान और शत्रु
नहीं है ॥ २३ ॥

इति वाणक्यनीतो मापाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

। अथ मन्त्रमोक्षायः ।

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषव-
त्यज ॥ क्षमार्जवदयाशौचं सत्य पीयू-
षवत्पिव ॥ १ ॥

(छद्) तात कहत जो मुक्ति स्थाणु सो, विषय गरु
समान । आर्जव दया क्षमा सत शौचहिं, पी दूषया
समान ॥ १ ॥

अर्थ—हे तात, जो मुक्ति की इच्छा करता है, तो विषयों को
विषके समान त्याग दे, तथा क्षमा, आर्जव, दया, शौच तथा
सत्य को अमृत के समान पी ॥ १ ॥

परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमा
त एव विलयं यांति वल्मीकोदरसर्प-
वत् ॥ २ ॥

दोहा—कहत परस्पर कटु वचन, नरन नराधम जाँन
वल्मी कोदर सर्प सम, नाशहिं पावत तौन ॥ २ ॥

अर्थ—जो मनुष्योंमें अधम परस्परमें मर्म वचनोका बोलते
हैं, वे बीमियों पड़े सपने समान नाशको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

मोक्षण प्रदान है । सर्व इन्द्रियोंमें नयन प्रदान है, सब अंगोंमें शिर प्रदान है ॥ ४ ॥

दूतो न सचरति खे न चलेच्चवार्ता पूर्व
न जल्पितामिदं न च संगमोस्ति ॥ व्यो-
म्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं जा-
नाति यो द्विजवर स कथं न विद्वान् ५ ॥

[छंद] बहिं पर आता न बात चळति यह, पूर्वन कथित न संयम हाय । नभयित रविशशि ग्रहण आन जो, वासन पर किमि बुध नहिं सोय ॥ ५ ॥

अर्थ—दूत आकाशमें नहीं आता, और न बात चळती, यह पहिले किसी ने नहीं कह रखा, और, न मेल होता है । आकाशमें स्थित अंग सूर्यका ग्रहण जो द्विजवेश जानता है ॥ यह कैसे पंडित नहीं है ॥ ५ ॥

विद्यार्थी सेवक पांथ क्षुधातो मयका-
तर ॥ मांडारी प्रतिहारश्च सप्त सुप्तान्
प्रबोधयेत् ॥ ६ ॥

दोहा—क्षात्र, वास, पंथी क्षुधित, कर्जदार मंहार ॥
सोवत सात जगावही, मय कातर प्रतिहार ॥ ७ K

अर्थ—विषार्थी, मोहर, पाणिन भूख से व्याकुल, तथा मनुष्य
 व्याकुल मंढारी तथा द्वारपाल इन सातको सोये हुए जमावे ॥
 अहिं नृप च शार्दूल किटि च बालकं
 तथा ॥ परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुसान्न
 बोधयेत् ॥ ७ ॥

दोहा—सर्प नृपति बालक तथा, किटि सिंह परश्वाना
 इन सातन न जगावही, सोवत नरन अजान ॥ ८ ॥

अर्थ—सर्वको, राजाको, सिंहको, और किटिको तथा बाल-
 कको दूसरेके कुत्तेको, तथा मूर्ख, इन सात-सोते हुआको
 न जगावे ॥ ७ ॥

अर्याधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्नभो-
 जिन ॥ तं द्विजाः किंकरिष्यति निर्वि-
 षा इव पन्नगाः ॥ ८ ॥

दोहा—द्विज भक्षी शूद्रान्न जो, श्रुति पठ बन हित जौन
 विन विष पन्नगगम सारिस, का करिहें द्विज तौन ॥ ९ ॥

अर्थ—जिन्होंने वेद पढ़न निमित्त पडे हैं वेसेही जो शूद्र-
 का भक्ष सामेवाले हैं । वे ब्राह्मण बिना विषके सर्पके समान
 मर्या करेंगे ॥ ८ ॥

यस्मिन् रुष्टे भय नास्ति तुष्टे नैव धना-
गमः ॥ निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति सरुष्ट किं
करिष्यति ॥ ९ ॥

दोहा—जिहि संतुष्ट न प्राप्ति धन, रुठे भय नहिं जौन
कृपा दह जिहि छाक्ति नहिं, रुठि करेहि का तौन ९ ॥

अर्थ—जिसके रुठनेसे भय नहीं, संतुष्ट होनेमें धनकी प्राप्ति
नहीं, तथा जिसमें दह देने, अनुग्रह करनेकी शक्ति नहीं है।
वह रुठकर क्या करेगा ॥ ९ ॥

निर्विषेणापि सर्पेण कर्तव्या महती फ-
णा ॥ विषमस्तु न चाप्यस्तु घटाटोपो
भयंकर ॥ १० ॥

सार विन विष के पञ्जग कहीं चादिये, दूरशावन फणमारी
विष होवै अथवा नहिं होवै, घटाटोप भयंकारी ॥ १० ॥

अर्थ—बिना विषके सर्पकाभी बड़ा फन दिखाना चादिये
विष हो या नहो घटाटोप भयंकर होता है ॥ १० ॥

प्रातर्धृतप्रसगेन मध्यान्हे स्त्रीप्रसगत ॥

रात्रौ चोर प्रसंगेन कालो गच्छति धी-
मताम् ॥ ११ ॥

[अर्थ] रात्रि चोर हरि कथाभागवत, पूत पौंड्र यद्य प्रातः ।
मध्य नारि यद्य पठत राम शुष्क, समय बुधनकर जात ॥ १ ॥

अर्थ—प्रभात समय पूत प्रसंगवाले ग्रंथ महामारतके, तथा;
मध्याह्न समय स्त्री प्रसंगके ग्रंथ रामायणके तथा रात्रिमें चोर
प्रसंगवाले ग्रंथ श्रीमद्भागवतके पढ़नेमें बुद्धिमानोंका समय
जाता है ॥ ११ ॥

स्वहस्तप्रथिता माला स्वहस्तघृष्टच-
न्दनम् ॥ स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्र-
स्यापि श्रिय हरेत् ॥ १२ ॥

[टिप्पणी] प्रातः काल मारतके पढ़नेसे यह विचारि, कि पूत का
काल कैसा धानि कवरक होता है ।

मध्याह्न काल रामायण की कथा पढ़कर मधुष्य वरिष्ठ कैसा
रचना चाहिये इस बात का विचार करे ॥ रात्रिके भागवत की
कथा सुनकर यह विचार करे कि श्री कृष्ण चंद्र १६८०८ शिवों
के मध्यमें रहकर भी कैसे भित्तिश्रिय से, वैसा अनुकरण हमसे
भी करना चाहिये । क्योंकि कृष्णचंद्र भी भित्तिश्रियों के आधार से ॥

दोहा—निज करको चदन घिसो, निज करकी कृत माळ
निज कर कृत सोत्र अरु, संपति हर सुरपाळ ॥ १२ ॥

अर्थ—अपने हाथकी गूथी माळा, अपने हाथका घिसा
हुआ चदन, अपने हाथका सिखा हुआ छोक, शक्तीभी
छत्पी हर डेते हैं ॥ १२ ॥

इक्षुदहास्तिला. शूद्रा कांता हेम च
मोदिनी ॥ चंदन दधि तांबूल मर्दन गु-
णवर्धनम् ॥ १३ ॥

(सार) कृष्ण तथा तिल शूद्र तथा दधि, महि चन्दन अरु
नारी।ताम्बूल हुक्चन को मर्दन, है गुण वर्धनमारी १३

अर्थ—कृष्ण, तिल, शूद्र, ली, धुवर्ण तथा पुष्पी, चन्दन,
तथा इरी तथा पानका मर्दन करना गुण वर्धक है ॥ १३ ॥

दरिद्रता वीरयता विराजते कुवस्त्रता
शुभ्रतया विराजते ॥ कदन्नता चोष्णत-
या विराजते कुरूपता शील्युता विरा-
जते ॥ १४ ॥

[छंद] दरिद्रता सोरहि धीरता ते । कुरूपता सोरहि धी-
 यता ते । कु मम हे सोइत सम्पत्ताते । कुबलता सोरहि स्व-
 यता ते ॥ १४ ॥

अर्थ—दरिद्रता धीरतासे सोइती हे, कुबलता स्वयतासे
 धोमा पाती हे । त्वराब मम मरम होनेसे धोमा पता है,
 तथा कुरूपता धीरसे धोमिस्त होती है ॥ १४ ॥

इति श्रीवाक्यनीतो शिवदास पंडितेय कृत भाषा-

टीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्च-
 य ॥ विद्यारत्नेन यो हीन स हीन स-
 र्ववस्तुषु ॥ १ ॥

दोहा—निश्चय वह धनवान मर, धन विहीन नहीं दीन।
 विद्या रत्न विहीन जो, वह सब वस्तुम हीन ॥ १ ॥

अर्थ—धनहीन हीन नहीं होता, यह निश्चयही धनी है । जो
 विद्यारूपी रत्नसे ना हीन है, वह सब वस्तुओंमें हीन है ॥ १ ॥

दृष्टिपूर्तं न्यसेत्पाद वस्त्रपूत पिवेज्जलम्

शास्त्रपुन वदेद्वाक्यं मनःपुन पमाचरेत्
 दोहा—दृष्टि शोचि राखौचरण, वस्त्रछानि पियवारि ।
 शास्त्र शुद्ध कह वचन कर, कागज हृदय विचारि ॥ २ ॥

अर्थ—दृष्टिसे शोच तर चरण रखवे, वस्त्रसे छानकर जल
 पीवे । शास्त्र से शुद्ध वचन बाडे मन से विचार कर कार्य
 करे ॥ २ ॥

सुखार्थी चेत्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत्य-
 जेतसुख ॥ सुखार्थिन कुतो विद्या सुखं
 विद्यार्थिन कुतः ॥ ३ ॥

दोहा—विद्याचाही तजहि सुख, विद्या तज सुख चाह ।
 सुख चाहिन विद्या कहौ विद्यार्थिन धन काह ॥ ३ ॥

अर्थ—सुख की इच्छा हो ता विद्या का त्याग करे विद्याकी
 इच्छा हो तो सुख का त्याग करे सुखार्थियों को विद्याकहीरे
 विद्यार्थी को सुख कहौ रे ॥ ३ ॥

कवयः किं न पश्यति किं न कुर्वति

योषितः ॥ मथपा किं न जल्पन्ति किं
न खादन्ति वायसा. ॥ ४ ॥

दोहा—कविगण देखत काह नहि, काह करत तिय माहि
मथप जरुपत काह नहि, वायस काह न खाहि ॥ ४ ॥
अर्थ—कवि क्या नहीं देखते छियाँ क्या नहीं करती । मथप
क्या नहीं बकते । कोए क्या नहीं खाते ॥ ४ ॥

रक करोति राजानं राजान रक्मेवच ॥
धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं-
विधि ॥ ५ ॥

दोहा—रूप कहँ करत वरिद्ध अरु, वीमहि करत भुजार।
धनद रंक रकहि धनद, कर विधि सिरजनहार ॥ ५ ॥

अर्थ—विषाखा वरिष्ठी को राजा, तथा राजा को रंक, और
धनियों को निर्धन तथा वरिष्ठियों को धनवान करता है ॥ ५ ॥

लुब्धानां याचक शत्रुर्मूर्खाणां बोधको
रिपु ॥ जारस्त्रीणां पति शत्रुश्चोराणां
चंद्रमा रिपु ॥ ६ ॥

दोहा—छोमिन याचक शत्रु करु, ज्ञानद शत्रु गैवार ।

चोरन के करि चद्रमा; पति अरि तियगन जार ॥ ६ ॥

अर्थ—छोमियों का याचक शत्रु है मुखों को ज्ञान देनेवाला शत्रु है । व्याभिवारिणी स्त्रियों का शत्रु पति है तथा चोरों का शत्रु चंद्रमा है ॥ ६ ॥

येषां न विद्या न तपो न दान न चापि
शीलं न गुणो न धर्म ॥ ते मृत्युलोके
भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्च-
रन्ति ॥ ७ ॥

उद्-भिन विद्या नहि शील न गुण नहि धर्म तपस्या करु
नहि दान नर वपु मृत्यु जगत मह बिचरत भार रूप त मृगा
प्रमान ॥ ७ ॥

अर्थ तिनको न विद्या है न तप है न दान है तथा न शील है
न गुण है न धर्म है वे मृत्युलोक में पृथ्वी के भार रूप मनु-
ष्यरूप से मृगा धूमते हैं ॥ ७ ॥

अंत सारविहिनानामुपदेशो न जाय-

ते ॥ मलयाचलससर्गान्नि त्रेणुश्चंदनाय
ते ॥ ८ ॥

(सोरठा) कागत नहि उपदेश, भीतर सार बिहीन के ।
बाँस म चंदन वेष्टा, कह मलयाचल संग ते ॥ ८ ॥
अर्थ—भीतर से सार हीनों को उपदेश नहीं लगता मलयाचल
की संगति से बाँस चंदन नहीं होता ॥ ८ ॥

यस्य नास्ति स्वय प्रज्ञा शास्त्रं तस्य
करोति किं ॥ लोचनाभ्यां विहीनस्य
दर्पण किं करिष्यति ॥ ९ ॥

दोहा—शास्त्र करिहि तिहि काह धी, है जाके मति नाहि ।
दर्पण करिहि काह धौ, छोषन हीनन कोहि ॥ ९ ॥
अर्थ—जिसके बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्या कर सफा है
नेत्रों से हीनको दर्पण क्या करेगा ॥ ९ ॥

दुर्जनं मज्जन कर्तुमुपायो नहि भूतले ॥
अपानं शतधा धात न श्रेष्ठ मिन्द्रिय
भवेत् ॥ १० ॥

दोहा—बुर्जन कहैं सज्जन करन, माँहि उपाय जहान ।
 कोई होत न बार शत, इन्द्रिय श्रेष्ठ अपान ॥ १० ॥

अर्थ—बुर्जन को सज्जन करने का उपाय पृथ्वी में नहीं है ।
 वे बार कोई भी अपान इन्द्रिय श्रेष्ठ इन्द्रिय नहीं होती ॥ १० ॥

आसद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः ॥
 राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥

दोहा—द्वेष बढन ते मरणहो, सब क्षय द्वेष भुवार
 शत्रु द्वेष जन नाश हो, हिज अरिता, कुलछार ॥ ११ ॥

अर्थ—बड़ों के द्वेष से मृत्यु होती है शत्रु के द्वेष से धन का
 नाश होता है राजा के द्वेष से सबका नाश होता है तथा ब्राह्म
 ण के द्वेष से कुल का नाश होता है ॥ ११ ॥

वर वने व्याघ्रगजेंद्रसेविते ह्रमालये पत्र
 फलांघ्रसेवनम् ॥ तृणेषु शय्या शतजी-
 र्णवल्कल न बधुमध्ये धनहीन जीव-
 नम् ॥ १२ ॥

छंद—सेवन बल फल तूण काय्या भल कथाय गजन सेवित बन
मौहि बलकल भल शतसंख इति धन वसुध न भल बंधुन न
मौहि ॥ १२ ॥

अर्थ—ध्याय तथा हाथियों से सेवित बड़े कुलवाले जन में पर
फल तथा बल का सेवन तूण की शाय्या तथा सौ बेगडी का
पुराना बहकल मछा है पर बंधुओं में निर्भर होकर जीना
मछा नहीं ॥ १२ ॥

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च संध्या वेदाः
शास्त्रा धर्मकर्माणि पत्रम् ॥ तस्मान्मू-
लं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव शा-
स्त्रा न पत्रम् ॥ १३ ॥

छंद—धर्म कर्म हैं पत्र वृक्ष द्विज मूल तासु संध्या श्रुति स्मर
राक्षिय मूल यत्न त विहि तै तरु सप जगह पत्र नहि डाल ॥ १३ ॥

अर्थ—शास्त्रण वृक्ष हैं ससकी जड़ संध्या है वेद शास्त्रा हैं तथा
धर्म कर्म पत्र हैं इस कारण मूल की यत्न से रक्षा करना चा
हिये मूलके छिन्न होने में न शास्त्रा रहती है न पत्र ॥ १३ ॥

माता च कमला देवी पिता देवो जना-

देनः ॥ वांधवा विष्णुमक्ताश्च स्वदेशो-
मुवनत्रयम् ॥ १४ ॥

छंद-मननी कमळा देवि पिता हैं बासुदेव वेषेश, विष्णुभक्त
गन बंधु बर्ग सब, तीन छोक निज देश ॥ १५ ॥

अर्थ-कृष्णी देवी माता है तथा अनार्जन देवही पिता है
मोर विष्णु भक्त बौध्द हैं तथा तीनोछोक अपना देश है ॥ १५ ॥

एकवृक्षसमारूढा नानावर्णा विहंगमा ॥
प्रभाते दिक्षु दशमु यांति का परिदे-
वना ॥ १५ ॥

बोहा-बैठे एकहि विटप तर, वर्णन अमित विहंगम
प्रात दिशा वंश जात उडि, यह की छोक प्रसंग १५

अर्थ-एकही वृक्ष पर बैठे हुए अनेक वर्ण के पक्षी प्रभात होने
पर दक्षि दिशा में भस्ते जाते हैं इसमें क्या दुःख ॥ १५ ॥

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो-
बलम् ॥ वने सिंहो मदोन्मत्तो जंबुकेन
निपातितः ॥ १६ ॥

छंद—जिहि बुद्धि है बल तासु है, बल कहौ कुमति मैझार
 सन्मस मद येहरिहि मारणा, विपिन मध्य सियार ॥ १६ ॥
 अर्थ—जिसके बुद्धि है उसने बल है निर्बुद्धि के बल कहौ है
 बम में मठवाले सिंद को सिया ने मार डाला ॥ १६ ॥

का चिंता मम जीवने यदि हरिविंश-
 मरो गीयते ॥ नो चेदर्भकजीवनाय जन-
 नीस्तन्य कथ नि सरेत् ॥ इत्यालोच्य
 मुहूर्ध्व्यदुपते लक्ष्मीपते केवलम् ॥ त्व-
 त्पादांबुजसेवनेन सतत कालो मया
 नीयत ॥ १७ ॥

छंद—विंशमर हरि कहे जात जो का शंका मम जीवन कौंछि
 यदि भस नाई तो क्षीर होत विमि पासन हित जननादौरमाई
 है कमलापति है य पुनायक बार बार गुनि के इमि बात
 तुव पादाम्बुज सेवन महीं नित मस्त समय बितायो जात १७
 अर्थ—ओभगवान विंशमर कहे जाते हैं तो मेरे जीवन में
 क्या शंका है यदि ऐसा न होता, तो बालक को जिबामे के
 निमिष उसकी माता के दूध पैसे निकसता इसी प्रकार बार
 बार निवारकर है यदुपति है लक्ष्मीपति। कबल तुझारे चरण

कमलों के सेवन सेही मुझमें निरंतर सत्य विद्या आता है ॥ १७ ॥

गीर्वाणवाणीषु विशिष्ट बुद्धिस्तथापि
भाषातरलोलुपोहम् ॥ यथा सुराणाम्
मृते च सेविते स्वर्गाग्नानामधरासवे
रुचिः ॥ १८ ॥

ॐ—हैं तथापि लोलुप भाषांतर यदि शुभमनिबानी गीर्वाण
सेवन अमिय यौहि चाहत सुर जिमि सुरतिय अघरासवपान ८

अर्थ—देववाणीमें यद्यपि सत्य बुद्धिवाला हूँ तौ भी मैं भाषा
तर्क स्मरूप हूँ जैसे वेषताओं की अमृतके सवन करने में
भी स्वर्ग की नारियों के अघर रूपी आसवमें रुचि होती है। ८

अन्नाद्दशगुण पिष्ट पिष्टाद्दशगुण पय ॥
पयसोऽष्टगुण मास मांसाद्दशगुण धृत-
म् ॥ १९ ॥

ॐ—अधिक पिष्टात अन्नते दशगुण, पय दशगुणदे अधिक

पिसान पयसे मांस आठ गुण है अरु, पल्लते पय दश गुणि
॥ महान ॥ १९ ॥

अर्थ—अन्न से पिसान दशगुण है पिसान से दशगुणदूध है
दूध से आठगुण मांस है तथा मांस से दशगुण घी है ॥ १९ ॥

शाकेन रोगा वर्धते पयसा वर्धते तनुः॥
घृतेन वर्धते वीर्यं मांसान्मांसं प्रवर्धते॥

टीका—बहुत खाक से रोग, दूध से तन है बाढत ।
घृत से वर्धत वीर्य, मांस से मांसहि बाढत ॥ २० ॥

अर्थ—खाक से रोग बढ़ता है दूध से शरीर बढ़ता है । घी से
वीर्य बढ़ता है मांस से मांस बढ़ता है ॥ २० ॥

इति श्री चाणक्यनीति शिवदास पांडेय कृत

सायादीक्यां दशमोऽध्यायः ॥ २० ॥

दातृत्व प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञ-
ता ॥ अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः
सहजा गुणा ॥ १ ॥

(छंद) धीरवर्त छन्दकावानी, दोबो उचित विचार ।
होत न प्राप्त अस्त्र कीनेते. स्वाभाविक गुण चार ॥ १ ॥

अर्थ—शाताहाना, सुवक्ता होना, भीरुवर्त होना उचित, विचार होना, यह चार स्वाभाविक गुण हैं अभ्याससे नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयेत् ॥ स्वयमेव लय याति यथा राज्यमधर्मतः ॥ २ ॥

(छंद) आत्म पक्ष परित्याग करत जो, अन्यपक्ष स्वीकार
२ मिमि अधर्म ते राज करत रह, आपदि तिमिसंहार ॥ २ ॥

अर्थ—मपने पक्ष को जो त्यागकर अन्यके पक्षका आश्रय करताहै । वह आपदी नाशको प्राप्त होता है जैसे अधर्म से राज्य ॥ २ ॥

हस्थी स्थूलतनु स चांकुशवश किं-
हस्तिमात्रांकुशा दीपे प्रज्वलिते प्रण-
४ श्यति तम किं दीपमात्र तम ॥ वज्र-
णापि हता पतन्ति गिरय किं वज्र-
मात्रा नगास्तेजो यस्य विराजते स-

बलवान् स्थुलेषू कः प्रत्ययः ॥ ३ ॥

छप्पय—इस्ती तनु स्थूल होत वश अकुश ते है ।

ताते अकुश काह धराधरी इस्ती के है ॥

दीप प्रकाशित होत अहहि तम जात असाई ।

ताते दीपक काह धराधरि तम व्है जाई ॥

पतितवज्र इत होत गिरि ताते सम गिरि कुलिश कहा

भारी तन विश्वास कह जाके तेज महान वह ॥ ३ ॥

अर्थ—हाथी स्थूल शरीर है वह अंकुश से बलीभूत होता है, क्या अंकुश हाथी के बराबर है । अंधकार दीपक के प्रकाशित होने से नष्ट होता है, क्या अंधकार दीपक के बराबर है, पर्वत वज्र से भी इत हुए गिरते हैं, क्या पर्वत वज्र की बराबर हैं जिसके तेज विराजमान होता है, वह बली होता है, स्थूल शरीर बाळों का क्या विश्वास है ॥ ३ ॥

कलौ दशसहस्राणि हरिस्त्यजति मेदिनीम् ॥ तदर्धं जान्हवीतोयं तदर्धं ग्रामदेवताः ॥ ४ ॥

दोहा—अयुत वर्ष धीते तजत, महि कलि महीं धनश्याम।
तासु अर्घ महीं गग जळ, तासु अर्घ सुर ग्राम ॥ ४ ॥

अर्थ—कलि में दण सहस्र वर्ष धीतने पर बिष्णु पृथ्वी को त्याग देते हैं, तिससे आगे में गंगाजळ तथा तिसके आगेमे ग्राम देवता ॥ ४ ॥

गृहासक्तस्य नो विद्या नो दया मांस-
भोजिनः ॥ द्रव्यलुब्धस्य नो सत्य स्त्री-
णस्य न पवित्रता ॥ ५ ॥

दोहा—विद्या नहिं गृह कोटुपहिं, दयान मांस अहारि।
द्रव्य काल्किहिं सत्य नाहिं, शौच नहिं वशनारी ॥ ५ ॥

अर्थ—ग्रहासक्त पुरुषों का विद्या प्राप्त नहीं होती, मांसभो-
जियों के दया नहीं होती, द्रव्य लालची के सत्य नहीं होता,
तथा स्त्री के बर्हीमूत को शौच नहीं होता ॥ ५ ॥

न दुर्जन साधुदशामुपैविवद्वप्रकारैरपि
शिक्षमाणः ॥ आमूलसिक्त पयसा घृ-
तेन न निवृक्षो मधुरत्वमोति ॥ ६ ॥

दोहा-कुर्जन लक्ष्म न साधु गति, शिक्षित विविध प्रकाश
पय घृत सीधो भीम तरु, जड न मधुरता धार ॥ ६ ॥

अर्थ-बहुत प्रकार से सिखाया हुआ कुर्जन साधुवशाको,
प्राप्त नहीं होता। मछी प्रकार मूलसे सीधा हुआ भीम वृक्ष
मधुरताको नहीं प्राप्त होता ॥ ६ ॥

अन्तर्गतमलो दुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि॥
न शुद्ध्यति यथा भाड मुराया दाहितं-
च तव ॥ ७ ॥

सार-अंतर मलधारी शठ तीरथ, मज्जन शुद्ध न होई।
मदिरापात्र न शुद्ध होत जिमि, दण्डो अनक मई सोई ७

[अर्थ] अंतरमें बिकार धारी पापी पुरुष सैकड़ों ही
थोके स्नान से भी शुद्ध नहीं होता। जैसे जलापात्र
भी मदिराका पात्र शुद्ध नहीं होता ॥ ७ ॥

न वेक्तियो यस्य गुणप्रकर्ष सत सदा
निन्दाति नात्र चित्रम् ॥ यथा किराती
करिकुमलब्धांमुक्तां परित्यज्य विभर्ति
भुजाम् ॥ ८ ॥

[छंद] का अक्षरज यह निंदित हो विहि, जो अहि
गुणन न जान सदा। यथा किरासी मुक्ता करि गज, त
जिके धारत गुंजाहार ॥ ८ ॥

[अर्थ]-जो जिसके अष्ट गुणोंको नहीं। जानता, वह
ससकी निरंतर निंदा करता है इसमें आश्चर्य क्या है।

जैसे भीखनी हाथीक घण्टस्यलपें मिले हुये मोतिपों
को त्याग गुंजा धारण करती है ॥ ८ ॥

येतु सवत्सर पूर्ण नित्य मौनेन भुंजते
युगकोटिसहस्र ते पूज्यते स्वर्गविष्टपे ॥

दोहा-पूर्ण वर्ष मरि मौन ब्रै, जो नित करत अहार,
सुरपुर पूजित होत ते, नर युग कोट हजार ॥ ९ ॥

[अर्थ]-जो पूर्णवर्षभरि नित्य मौन होकर भोजन क
रते हैं। वे सदस नाति युग तक स्वर्गमें पूजे जाते हैं ॥ ९ ॥

कामक्रोधौ तथा लोभ स्वादु शृंगार-
कौतुके ॥ अति निद्रातिसेवे च विद्या-
र्थी त्वष्ट वर्जयेत् ॥ १० ॥

दोहा - काम क्रोध अतिसेव अरु, कोम स्वाद शृङ्गार ।
अति निद्रा कौतुक तजहि, विषय चाहनहार ॥ १० ॥

[अर्थ] काम, क्रोध, तथा कोम स्वाद शृङ्गार, तथा कौतुक, अति निद्रा, अति सेवा, यह आठ वस्तु विपार्थी त्याग देवे ॥ १० ॥

अकृष्टफलमूलानि वनवासरति सदा ॥
कुरुतेऽहरह श्राद्धमृषिर्विप्र.स उज्यते ॥

छंद-भूमिमें अकृषि साथ फल मूलोंई, करत आद नि-
त ओई । नित दिन रत वनवास विप्रवर, कष्टो जात अरुपि
ओई ॥ ११ ॥

अर्थ-बिना जोती भूमिसे उत्पन्न हुय फल मूलका मो
वन, निरंतर वनवासमें प्रीति, तथा [जो] निरंतर आद
करता है, वह आश्रम अरुि कहा जाता है ॥ ११ ॥

एकादारेण सतुष्ट पदकर्मनिरत.सदा ॥
ऋतुकालाभिगामी च स विप्रो द्विज
उच्यते ॥ १२ ॥

ध्व-तुष्ट एकही बार आसनते, प्रातु तिय रति कर जो
ई । सदा निरत पट कर्म विप्रवर, बहो आत द्विज सोई १२

अर्थ-एकही बारक भोजन से संतुष्ट, सदा पठकर्म
निरत, तथा [जो] प्रातुपाठमें स्त्री प्रसंगकारी है वह मा
झण द्विज कहा जाता है ॥ १२ ॥

लौकिके कर्मणि रत पशूना परिपा-
लकः॥ वाणिज्यकृषिकर्मा य. स विप्रो
वैश्य उच्यते ॥ १३ ॥

उद-कारत कृषी वाणिज्य तथा, रत पशुससारी जोई
विप्र पशुनगण पालनकारी, वैश्य कहावत सोई ॥ १३ ॥

अर्थ संसारेके कर्मा में प्रीति वारी, पशुमोका पालनक
रनेवाला, तथा जो वाणिज्य तथा खेती करनेद्वारा है वह
माझण वैश्य कहा जाता है ॥ १३ ॥

लाक्षादितेलनीलीना कौस्तुभमधुसर्पि-
पां ॥ विक्रेता मद्यमांसाना स विप्र शु-
द्र उच्यते ॥ १४ ॥

छंद-मधु घी कुसुम तेल छासादिक, तथा नीलको बेषमहार
पद मांसादिक को बिक्रेता, यद्यो शूद्र वह विप्र कुमार ॥ १४ ॥

अर्थ-छास इत्यादि, पदार्थ, तेल, नील, कुसुम, मधु, घी,
मय तथा मांस का बेषनेवाला ब्राह्मण शूद्र कहा जाता
है ॥ १४ ॥

परकार्याविहंता च दांभिक स्वार्थसाध-
क छली द्वेषी मृदु क्रूरो विप्रो मार्जार
उच्यते ॥ १५ ॥

छंद-द्वेषी छली क्रूर मृदु दौभिक, अरु परकाज विगारनहार
कहो जात मार्जार विप्र है, अरु स्वार्थ निज साधनवार ॥ १५ ॥

अर्थ-दूसरे के धार्मिक मष्ट करनेद्वारा, और पाखंडी,
स्वार्थ साधक, छली तथा द्वेषी मृदु तथा क्रूर ब्राह्मण
मार्जार कहा जाता है ॥ १५ ॥

वापीकृपतडागानामारामसुरवेश्मना-
म ॥ उच्छेदने निराशंक स विप्रो म्ले-
च्छ उच्यते ॥ १६ ॥

छन्द- कृप बाधली तथा सरोवर, सुरमंदिर अमरार्द्र ।

नाश करम यहै होत न शाशित, सो द्विज म्लेच्छ कहाई ॥ १६ ॥

अर्थ-बापी कृप सहाज, तथा अमरार्द्र, देव मंदिरके ना-
श करमेमे शंका न करनेहारा प्राज्ञ म्लेच्छ कहाजाताहै ॥

देवद्रव्य गुरुद्रव्य परदारामिमर्शनम् ॥

निर्वाह सर्वभूतेषु विप्रश्चांडाल उच्य-
ते ॥ १७ ॥

छन्द- सुरघन गुरुघन अरु रतिवारी, बलसमेत पर बाल ।

सब प्राणिनसों निर्वाहयद्विज, कसो जात चांडाल ॥ १७ ॥

अर्थ-देवद्रव्य, गुरुद्रव्य, तथा पर स्त्रीसे बल पूर्वक भोग
करनेहारा तथा सब प्राणियोंसे निर्वाह करनेवाला विप्र
चांडाल कहा जाताहै ॥ १७ ॥

देयं भोज्यधन धन सुकृतिभिर्नो सच-
यस्तस्य वै श्रीकर्णस्य वलेश्च विक्रम-
पतेरद्यापि कीर्ति स्थिता ॥ अस्माक
मधु दान भोगरहित नष्ट चिरात्सचितं

निर्वाणादिति नष्टपादयुगलं घर्षेत्यहो
माक्षिका ॥ १८ ॥

[छप्पय] देव भोज्य घन द्रव्य तथा सुकृतीन नरनको
संचित उचित न तासु उपार्जित निश्चय घनको ॥

बलि विक्रम श्री कर्ण सुयश अवर्को जग छायो ।
हमरो नाशयो दान मीग विन छाहद कमायो ॥
अमित काल संचित कियो, यहि विधि नष्ट विषाद है ।
मघु हित शोक्ति युगल निज, घिसत माक्षिका पाव है १८

अर्थ—पुण्यात्माओं को भोजन के योग्य घन, तथा द्रव्य
देना चाहिये । निश्चय करके उसका संघष म करना चाहिये
श्रीकर्ण, बलि, तथा विक्रम की कीर्ति अवतक स्थित है, दान,
तथा भोग से रहित बहुकालसे संचित किया हुआ हमारा मघु
नष्ट हागमा है इसप्रकार नष्ट होनेसे बह है । कि माक्षिका—
अपने दोनों पैरों से घिसा करती है ॥ १८ ॥

इति श्रीचाक्यनीलो शिषदास पीठय कृत भाषा-
टीकायां मेवादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सानन्दं सदनं सुतास्तु सुधियः कांता-
प्रियालापिनी॥ इच्छापूर्तिं धनं स्वयोषि-
ति रतिः स्वाज्ञापराः सेवका ॥ आति-
थ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं
गृहे॥ साधोः संगमुपासते च सततन्यधो
गृहस्थाश्रमः ॥ १ ॥

[छप्पय] गृह आनन्द ते पूर्ण, तथा प्रियवादिनी मारी।
अतिथि जनन सत्कार, मृत्युगन आशाकारी ॥
इच्छापूरक द्रव्य, प्रीति उत्तम निज बाला ।
संगति पावन परम, साधु जनकी सब काला ॥

दोहा-जल भोजन मिष्टान्न नित, सेव सदा द्वासि घटनकर
गृह आश्रम इमि धन्य है, सुवन परम मतिमान वर ॥ १

अर्थ-घर आनन्दसे पूर्ण, तथा सुखिमान पुत्र तथा प्रियवा-
दिनी स्त्री इच्छा पूर्तिकारक धन, एवं-अपनी स्त्री में प्रीति

अथानी आवाके पाकक सेवक, अतिविशेषेवा, शिवपूजन
प्रतिदिन एहमें मिष्टान्न भोजन तथा पान, विंतर काष्ठ
अनोंकी संमति, इसप्रकारका एहस्वाभम धन्य है ॥ १ ॥

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च यच्छ्रद्धया
स्वल्पमुपैति दानम् ॥ अनतपारं समु-
पैति राजन् यद्दीयते तन्न लभेद्विजेभ्यः ।

उद् भारत द्विजन दया भद्रा सह, दियो जात जो दान ।
दियो द्विजन का कियो जात नहिं, सो मृप होत महान ॥ २ ॥

अर्थ—दुली आदमों में दयामें युक्त; जो भद्रासे बोझाभी
दान दिया जाय, हे राजन । वह अमर्तताको प्राप्त होता है ।
वह आदमों से नहीं किया जाता ॥ २ ॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया प्रजने शाठ्यं-
सदा दुर्जने, प्रीति साधुजने स्मयः । स्व-
लजने विद्वज्जने चार्जवम् ॥ शौर्यं शत्रु-
जने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता, इ-
त्थं ये पुरुषा कलासु कुशलास्तेष्वेव
लोकस्थितिः ॥ ३ ॥

[छण्यय] मानव विद्यावान, जनन सन्मुख सरंलद्धि ।

चातुरता मिज जनन, अधम जन गन अधमार्ह ॥

प्रीति साधु जन सग, दया पर जन पर करह ॥

क्रोध गर्व खल नरन, क्षमा गुरु जन हित धरह ॥

मारी जन सन भूर्तता, अरिजन सन्मुख शौर्यवर ॥

तिनही ते मर्याद जग, जे इहिविधि गुण कुशलनर ॥३॥

अर्थ—मपने परिवारमें दक्षता, दूसरे मनुष्यों में दया दुर्जनों में निरंतर शास्त्र-साधु जनमें प्रीति दुष्टजनमें अभिमान, तथा सर्ववर्गों में दया शास्त्रियों में श्रुता, अकननों में क्षमा, स्त्रियों में श्रुता, राजा को गुरु को सकल में चतुर होते हैं । तिनकीही लोकमें यद्गुण जाये ॥ ३ ॥

हस्तौ दानविवर्जितौ भगतिपटौ सारस्व-
तद्रोहिणौ, नेत्रे साधुः शोकनेन रहिते
पादौ न तीर्थं गतौ ॥ अन्यायार्जित-
वित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुंगं शिरो, रे रे ज

म्बुक मुंच मुंच सहमा नीचं सुनिधं व-
पुः ॥ ४ ॥

[छम्पय) उभय विच्छेदन रहित, साधु दर्शन ते आहीं।
दीन्खों कबहूँ वाम, युगल हाथन ते नाहीं ॥ तीर्था
श्रम न पयाम, कीन नौहीं युग चरनन ॥ सरस्वती ते
ब्रह्म, अहहिं राखत युग श्रवनन ॥ उन्नत मस्तक
गर्व ते अनय द्रव्य पूरण उदर ॥ रे रे जम्बुक शीघ्रही
इमि निम्बितवपु त्याग कर ॥ ४ ॥

अर्थ—हाथ दानसे रहित, तथा अश्रु सरस्वती से ब्रह्मकारी
हैं; दोनों नेत्र साधु दर्शन से रहित, तथा चरण तीर्थको नहीं
गचे ॥ अम्बाय से उत्पन्न किये मनसे ही मिनका उदर पूर्ण
है, तथा गर्वसे शिरकचाही रहता है रे । रे ॥ जम्बुक ।
शीघ्रही ऐसे निम्बित शरीरका त्यागकर ॥ ४ ॥

येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्ति
भक्तिर्नराणां येषामामीरकन्याप्रिय-
गुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा ॥ येषां श्री-

कृष्णलोलालितरसकथासादरौ नैव-
 कर्णौ, धिक् तान् धिक् तान् धिगेतान्क-
 थयति सतत कीर्तिनस्थो मृदंग. ॥५॥
 [सवैया] मानवकी जिह्वा प्रीति नहीं यशुदासुत के
 पद पकज माहीं गोप सुता प्रिय के गुण वर्णन में रस-
 ना जिनकोलुप नाही ॥ सुंदर कृष्ण चरित्रन में जिन
 कर्ण नहीं युत आदर आहीं ॥ गान समैहि मृदंग
 सदा कहै धिक् है धिक् है तिन काहीं ॥५॥

अर्थ—जिन मनुष्योंको यशुदासुत कृष्णके चरणोंमें प्रीति
 नहीं है । जिनकी जिह्वा ब्रजगोपियोंके प्रिय श्रीकृष्णके गुण
 कथन में अनुरागिनी नहीं है ॥ जिनके अक्षय श्रीकृष्णकी सुन्दर
 लीला मरी कथाओंमें आदरवाले नहीं हैं । इसप्रकारके सब
 [मनुष्यों] को धिक्कार है सबको धिक्कार है सबको धिक्कार
 है ॥ इसप्रकार निरंतर कीर्तन स्थित मृदंग बहता है ॥ ५ ॥

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसंत-
 स्य किं नोल्लकोप्यवलोकते यदि दिवा

सूर्यस्य किं दूषणं ॥ वर्षं नैव पतेत्तु चा-
तकमुखे मेघस्य किं दूषणं, यत्पूर्वं वि-
धिना ललाटलिखितं तन्मार्जितं क-
क्षमः ॥ ६ ॥

सवेया—पत्र करीर नहीं यदि हैं कह दोष अहै प्रसूत
राजहि कौहीं । हे कह दोष प्रमाकर में यदि नाहि ठ-
लूक करै दिन मोंहीं ॥ वर्षत पातकके मुख नाहि
कहा तब दूषण वारिख पौहीं । भाळ किह्यो विधि ओ
तिहिको अस कौन समर्थ मिटावन आई ॥ ६ ॥

अर्थ—जो करतिके घुसमें पड़े नहीं हैं, तो वसंतका क्यों
दोष है जो छल्लेक दिनमें नहीं देखता, तो सूर्यका दूषण क्या
है ? पातकके मुखमें वर्षा नहीं होती, तो मेघका क्यों दूषण
है ? जो पहिले बिधाताने मस्तकमें लिख दिया है उसे मिटा-
नेको कौन समर्थ है । ॥ ६ ॥

सत्संगाद्भवति हि साधुता खलानां मा
घृणां नहिखलसंगतः खलत्वेन ॥ आशो

दं कुसुमभव मृदेव धत्ते मृद्गर्ध नहि कु-
सुमानि धरयान्ति ॥ ७ ॥

छंद-सहस्र साधुता सख सुसंगते साधु मखलपन सख संग
माहि । मृत्तिका पारत पुष्प गंध कहैं, पुष्प गंध माहि पारत
माहि ॥ ७ ॥

अर्थ-दुष्टोंको सत्संगतिसे साधुता होतीही है, सखोंकी
संगतिस साधुओंका दुष्टता नहीं होती ॥ मिट्टीही फूलोंकी
गंधको पारण करती है, पुष्प मिट्टीकी गंधको नहीं पार
ण करते ॥ ७ ॥

साधुना दर्शन पुण्यं तीर्थभ्रताहि साध-
व ॥ कालेन फलते तीर्थ सद्यः साधु
समागम ॥ ८ ॥

दोहा-साधु ताहि ते तीर्थ वपु, दश पुण्य वपु सत ।
तीर्थ समयपर वेत फल, साधु प्रसंग तुरत ॥ ८ ॥

अर्थ-साधुओंका दर्शन पुण्यरूप है, जिससे कि साधु
जन तीर्थरूप हैं, तीर्थ समयपर फल देता है । साधुओंका
समागम हरबाल पर देता है ॥ ८ ॥

विप्रास्मिन् नगरे महान् कथय कस्ता-
 लद्धमाणां गणः॥को दाता रजको ददा-
 ति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि॥को दक्षः
 परविस्तदारहरणे सर्वोपि दक्षोजनः॥क-
 स्माज्जीवासि हे सखे विषकुमिन्यायेन
 जीवाम्यहम् ॥ ९ ॥

कविच—विप्र यहि नगर महान कौन माषहु तौ—
 ताकनके वृक्षको समूहही महान है ।

दाता कौन रजक के प्रातकाक वस्त्रको
 देत माहि रात्रिकाक मौहि वस्त्र धारन है ॥

कौन है सुजान परधन जरु मारिन के
 ग्रहण करन मौहि सकळ सुजान है ।

मीत किहि मौति इहि नगर में जीवत हो
 विष कुमि न्याय हस जीवत प्रमान है ९॥

अर्थ—हे मित्र ! इस नगरमें बड़ा कौन है ? कहो, ताकके
 वृक्षोंका समूह बड़ा है दाता कौन है ? बोधी, वस्त्रोंको

सबरे लेकर रात्रिको देदेता है। चतुर कौन है ? परायण न
 तथा छकि ग्रहण करनेमें सबही जन चतुर है, हे मित्र ! किस
 प्रकार इस नगरमें जीते हो विष छपि म्यायसे मैं जीता हूं ॥ ९
 न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्र
 ध्वनिगर्जितानि ॥ स्वाहास्वधाकारवि
 वर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि
 तानि ॥ १० ॥

छंद—द्विज पादोदक कीच माहिं अरु, वेद शास्त्र ध्वनि
 गर्जन माहिं । स्वाहा स्वधा विहीन शब्द है, तेषार मृतक
 मृमि सम माहिं ॥ १० ॥

अर्थ—जहाँ ब्राह्मणोंके घरणोंके अछसे कीच नहीं है । वेद शास्त्र
 की ध्वनिकी गर्जना नहीं है ॥ तथा स्वाहा, स्वधाकार शब्दसे
 भी रहित है, वे घर श्मशानकी समान हैं ॥ १० ॥

सत्य माता पिता ज्ञान धर्मो आता द-
 या सखा ॥ शांति पत्नी क्षमा पुत्र पढेते
 मम बांधवा. ॥ ११ ॥

सार—ज्ञानपिता तियर्शति तथाहै क्षमासुवन ससमाता

दयामित्र यह पट धौंख मम, धर्म अहहि ममभ्राता ॥

अर्थ—सत्य माता है, धान पिता है, धर्म भाई है, दया मित्र है। शांति-स्त्री है, समा पुत्र है यह वह मेरे वधु है ॥ ११ ॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शा
श्वत ॥ नित्यं सन्निहितो मृत्यु कर्तव्यो
धर्मसंग्रह ॥ १२ ॥

बोद्धा—वैभव शाश्वत नित्य नहीं, अहहि शरीर अनित्य
ताते संग्रह धर्म कृत, मृत्यु समीपहि नित्य-॥ १२ ॥

अर्थ—शरीर अनित्य है, तथा विभव निरंतर स्थायी है,
मृत्यु नित्यही समीप है, [इच्छाम्ये) धर्मका संग्रह करना
वर्णित है ॥ १२ ॥

निमग्नोत्सवा विप्रा गावो नवतृणो-
त्सवा ॥ पत्युत्साहयुता भार्या अहं कृ-
ष्ण रणोत्सवः ॥ १३ ॥

बोद्धा—विप्र निमग्न प्रिय तथा, नव तृण उत्सुक गाय
उत्सुक पति तिय प्रासिकी, मैं रण प्रिय यदुराय १३ ॥

अर्थ—प्राण निष्पन्नसे उत्पन्न है, गोप नवीन पुणकी
उत्पन्न है, स्त्री पति प्राप्तिकी उत्पन्न है। हे कृष्ण! मैं रण
का उत्पन्न हूँ ॥ १३ ॥

मातृवत्परदारंश्च परद्रव्याणि लोष्टव-
त्॥ आत्मवत्सर्वमृतानि य पश्यति स-
पश्यति ॥ १४ ॥

उद्—परधन छोष्ट समान अभ्यतिथ, हस्त मातृ सम जोई।
सब प्राणिन निज परिषदि आमत निधय देसत सोई ॥ १४ ॥

अर्थ—पर स्त्रियोंको माताके समान, पर द्रव्यको मिट्टीके
देसेके समान सब प्राणियोंको अपनी गमान जो देसता
है, वही पृथिमान है ॥ १४ ॥

धर्मं तत्परता मुखे मधुरता दाने समु-
त्साहता, मित्रे वचकता गुरौ विनयता
चित्तेऽतिगभीरता ॥ आचारे शुचिता
गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता, रूपे
सुंदरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति मो-
राधव ॥ १५ ॥

छुप्य—मधुरार्द्र मुख मौंहि, तथा उत्साह दानमहै
 चित महै अति गौभीर्य, रहितता कपटमित्रपहै
 शुचिताई आचार, रसिकताई गुण मौंहि ।
 शास्त्रन महै विज्ञान, भजनता अरु शिवपौंहि ॥
 तत्परता बढ भर्म महै, सुंदरताई रूप धर ।
 विनय शीलता गुरुन सम, तुम महै राघव
 धनुषधर ॥ १५ ॥

अर्थ—धर्ममें तत्परता, सुखमें मधुरता, दानमें उत्साह
 मित्रसे छूट रहितता, शुरुसे नम्रता, चितमें गौभीरता, आ-
 चारमें शुद्धता, गुणमें रसिकता शास्त्रमें ज्ञान, रूपमें सुंद-
 रता, शिवमें भजनता, (भक्तिता) हे राम ! यह सब गुण
 तुममें हैं ॥ १५ ॥

काष्ठं कल्पतरु सुमेरुरचलश्चितामणिः
 प्रस्तर ॥ सूर्यस्तीव्रकर शशी क्षयकर.
 क्षारोहि वारां निधिः कामो नष्टतनुर्व-
 लिर्दितिष्ठतो नित्य पशुः कामगौर्नोतां

स्ते तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा
दीयते ॥ १६ ॥

छप्पय—काष्ठ कल्पतरु अहहि, मेरु गिरि अश्ल
महाना । चिन्तामणि पाषाण, किरण धारक हैं भागा ॥
अयधारक शिवनाथ, वारि आकार है खारी । काम
ग्रीर विहीन, सुवन दितिबलि रणकारी १ अहहि
मुसुर नित्यपशु, तुम सम देखत नौहि इन । रामच-
द्र रघुबन्ध मणि, बड़ जाहि उपमाजु किन ॥ १६ ॥

अर्थ—कल्पतरु काष्ठ है, छुमेरु पर्वत अश्ल है । चिन्ता
मणि पत्थर है, सूर्य तीव्र किरणवाला है चद्रमा अयधारक
है, वारिनिधि तारा है, कामदेव शरीर हीन है राजाबलि
दितिपुत्र है । कामपशु निरंतर पशु है, है राम । इनका
तुल्यता बराबर नहीं देखता, तो किसकी उपमा दीजाय १६ ॥

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु
च ॥ व्याधिस्थस्यौषधं मित्रं धर्मो मि-
त्रं मृतस्य च ॥ १७ ॥

दोहा-विद्या मित्र प्रवास मई नारि मित्र धृष्ट मौहि
मित्र औषधी व्याधि मई, बर्म मित्र मूस कौहि ॥ ११ ॥

अर्थ-परदेशमें विद्या मित्र है, और घरमें भार्या मित्र।
और रोगीकी औषधि मित्र है, और सुतकका बर्म मित्र।
विनय राजपुत्रेभ्यः पंडितेभ्य सुभाषि
तम् ॥ अद्वतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षं
त कैतवम् ॥ १८ ॥

दोहा-बुधजन सन भाषण शुभगा, भाषण असतजुवौरि
सिखय विनय नृप सुतन तन, तथा कपटता नारि ॥ १८ ॥

अर्थ-राजपुत्रों से विनय, पंडितों से सुभाषण, छुनौरियों
से धनसम्भाषण तथा स्त्रियों से कपट सीखें ॥ १८ ॥

अनालोक्य व्यय कर्ता अनाथ कलह
प्रिय ॥ आतुर सर्वक्षेत्रषु नरः शिघ्रि
विनश्यति ॥ १९ ॥

दोहा-५५ ॥ १९ ॥ तुरतियन सब अरु प्रिय कलह मैसार
तह होत है ॥ अनर व्यय न विचार ॥ १९ ॥

भर्य-बिना विधारे धर्म करने वाला, स्वामिहीन कछु
मिष सह सात्तिकी स्त्रियों में भोग करने को आहुर मनुष्य
शीघ्र नाश होजाता है ॥ १९ ॥

नाहार चिंतयेत्प्राज्ञो धर्ममेकहि चित-
येत् ॥ आहारो हि मनुष्याणां जन्मना
सह जायते ॥ २० ॥

(छंद) बरहि म चिन्ता विद्य भजनकी निधय कर
सुधर्म विचार ॥ क्यों की मानव गणन संगही, प्रगट होत है
अवधि महार ॥ २० ॥

भर्य-बुद्धिमान भोजन की चिन्ता न करे, निधय करके
एक धर्म काही विचार करे क्योंकि भोजन मनुष्यों के जन्म
के साथ प्रगट होता है ॥ २० ॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणे तथा॥
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्ज. सुखी
भवेत् ॥ २१ ॥

[छंद] यन अरु धान्य प्रयोग पाँहि अरु, तेषदि विद्या

ग्रहण अहार, सुखी होत व्यवहार भीहि है, मानव कृष्ण
 त्यागवहार ॥ २१ ॥

अर्थ—वन धाम्य के प्रयोगमें तेसेही विषाके ग्रहणमें और
 भोजन में व्यवहार में कृष्ण का त्यागनेहारा सुखी होता है ॥ २१ ॥
 जलविंदुनिपातेन क्रमशः पूर्वते घटः ॥
 स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य
 च ॥ २२ ॥

[छंद] कलकी बूँद बूँद टपकन से, कम क्रमशः ही घट
 भरि जाहि। यह कम सब विषा धन को भर, तथा धर्म सबय
 को जाहि ॥ २२ ॥

अर्थ—जलकी बूँद बूँद के गिरनेसे, क्रमशः घटा भर जात,
 है यह कम सब विषाओंका, धर्म का तथा धन के सबय क
 भी कारण है ॥ २२ ॥

वयसः परिणामेऽपि यः खलः खल एव
 सः ॥ सपक्वमपि माधुर्यं नोपयातीन्द्रवा
 रुणाम् ॥ २३ ॥

(पुं०) वयस अत मई अहहि दुष्ट जो, रहते दुष्ट है सोई
इंद्रायण फल पको भली विधि, तदपि मधुर नहि होई ॥२३॥

अर्थ—वयस के अतकाल में भी जो सख है, वह सखी
पदा है, भली प्रकार पका भी इंद्रायण मधुरता को प्राप्त
नहीं होता ॥ २३ ॥

इति श्री चाणक्य नीतौ शिवदास पीड्यकृत,
भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयादशाऽध्यायः १३ ॥

सुहृत्तमपि जीवेच्च नर शुक्लेन कर्मणा ॥
न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधि-
ना ॥ १ ॥

उद—सुहृद्वत्तम नर सुहृत्त ही, जिसहि सफल तो भाई ।

कृतमपि दुःखार्थ विरापी शुभ वरूपहूँ तो नाहीं ॥ १ ॥

अर्थ—मनुष्य सुहृद्वत्तम सुहृत्तमाय भी जीवें, तो सफल है
दोनो शोख विरापी कष्ट में कष्ट कष्ट पर्यंत अविनभी
मका नहीं है ॥ १ ॥

गते शोको न वर्तव्यो भविष्य नैव चि-

तयेत ॥ वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते वि
चक्षणाः ॥ २ ॥

दोहा—शोक न बीते कर उचित; करहि न भावि विचार
वर्तमान अनुसारही, वर्तत पुरुष उदार ॥ २ ॥

अर्थ—बीतेहुपका शोक न करनेवा चार्हिये, हेमहारका
विचार न करे । विचक्षण पुरुष वर्तमानकालके अनुसार
वर्तति करते हैं ॥ २ ॥

स्वभावेन हि तुष्यति देवाः सत्पुरुषाः
पिता ॥ ज्ञातयः स्नानपानाभ्यां वाक्य
दानेन पठिताः ॥ ३ ॥

दोहा—सुर पितृ तथा महाजम; तुष्ट स्वमविधि होत ।
वाक्य दान ते विज्ञ जन, स्नान पान जन गोत ॥ ३ ॥

अर्थ—देवता, महात्मा तथा पिता स्वभावसेही संतुष्ट हो
ते हैं । ज्ञातिजन स्नान पान, तथा पठितजन सुवाक्यसे ॥
आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमे-

व च ॥ पचेतानि च सृज्यते गर्भस्था-
स्यैव देहिन ॥ ४ ॥

दोहा—आयु कर्म अरु घन तथा, दिष्टा दयस निदान
यद् देहिनस्ये गर्भही, पच्ये होत निमान ॥ ४ ॥

अर्थ—अवस्था वय, अरु घन दिष्टा, तथा मृदादुभी यद्
वाचा देहपार्श्व गर्भमें स्थितसे समवर्ती सुभ जात है ॥ १ ॥

अहो वत विचित्राणि चरितानि महा-
त्मनाम् ॥ ७ ॥ तृणाय मन्यन्ते तद्भा-
रेण नमति च ॥ ५ ॥

दोहा—अहो महा अचरज मर, मानव चरित महान ।
नमत दक्षिणी मागते मान । तृणहि समान ॥ ५ ॥

अर्थ—मात्रदक्षिणी महात्माजनोक्त विचित्र चरित है । अ
होरो तृणही समान मानत है । और उधरके मात्त हनु
जात है ॥ ५ ॥

यस्य स्नेहो भय तस्य स्नेहो ह स्वस्य

भाजन ॥ स्नेहमूलानि दु खानि तत्
 त्यक्त्वावसत्सुखम् ॥ ६ ॥

दोहा—मेह मूल है श्लेशकर, जाहि नेह तेहि आस ।
 त्यागि मेह कहैं ताहि नर सुखयुत कहि निवास ॥ ६ ॥
 अर्थ—जिसका स्नेह है, उसीको भय है स्नेह दुःखका
 पात्र है । स्नेह दुःखका मूल है । उस स्नेहको त्यागकर
 सुख पूर्वक निवास करे ॥ ६ ॥

अनागताविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्त-
 था ॥ द्वावेतौ सुखमेधते यद्भविष्य वि-
 नश्यति ॥ ७ ॥

समाः ॥ गजानमनुवर्तन्ते यथा राजा
तथा प्रजा ॥ ८ ॥

उ०-राजा पारी पर्यो धन, सम नृप हेतु समान ।
अनुवर्तन हे वरत नृपतिपते, जिनपि नृप तथा प्रजान ॥ ८ ॥

अर्थ-रज राजा पर्यो हान स धर्म पापा हान से पापी
सम होने स समाः होती है । इस प्रकार राजा का अनुवर्तन
करती है ॥ जैसा राजा होता है, वैसी प्रजा होती है ॥ ८ ॥

जीवन्त मृतवन्गान्ये देहिनि धर्मवर्जि-
तम् ॥ मृतो धर्मण सयुक्तो दीर्घजीवा न
सशय ॥ ९ ॥

उ०-जीवित धर्म होने देही का, मानस मृतक समान ।
बीसी देह अशेषय जीवित, मृतक सपर्य्य महान ॥ ९ ॥

अर्थ-पर्य्य स वर्जित जीव हुए देही का मृतक के
समान मानता है । धर्म युक्त मृतक भी निरुद्ध दीर्घ
बीसी है ॥ ९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्य कोऽपि न

विद्यने ॥ अजागलुस्त्वनस्येव तस्य ज-
न्म निरर्थकम् ॥ १० ॥

उद्-अर्थ अर्थ अहं काम मोक्ष यहै, एतद् भार्गो जाको
अजा अहं सम अर्थ पयोषा, जन्म अर्थ है जाको ॥ १० ॥

[अर्थ] जिसके अर्थ अर्थ काम प्राप्त में एकभी नहीं है।
बकरी के गळे क स्वन के समान उसका जन्म
अर्थ है ॥ १० ॥

दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः परयशोऽग्नि-
ना ॥ अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निंदां
प्रकुर्वते ॥ ११ ॥

उद्-दहन अनह पर कीर्ति तीव्र अति, तिहि पर लहव
पौहिं असमर्थ ॥ नीच महा पर निंदा कारक, काव ताहि की
निन्दा अर्थ ॥ ११ ॥

अर्थ-नीच पुरुष अत्यंत तीव्र दूसरे की कीर्ति रूख अग्नि
से जलते हुए, उसकी योग्यता का जाने को असक्त होते हैं
विषी से उसकी निन्दा करते हैं ॥ ११ ॥

वन्धाय विषयासङ्गो मुक्तौ निर्विषयं

मनः ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं
बन्धमोक्षयोः ॥ १२ ॥

(छंद) ब्रह्म हेतु सा विवर्तन मनः, विवर्तन सहित कारण निर्वाण
मनः हेतु मनुष्य मन केरो, कारण ब्रह्म मोक्ष प्रधान ॥ १२ ॥

अर्थ-विषयो यी संगति बंधन के निमित्त है । विषयो से
रहित मन मुक्ति का कारण है ॥ मनुष्यों से बंधन तथा मोक्ष
का कारण मन ही है ॥ १२ ॥

देहाभिमाने गलिते ज्ञानेन परमात्म-
न ॥ यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र
समाधय ॥ १३ ॥

दोहा-परम पुरुषके ज्ञानते, मष्ट गवने गाने ।

तिन नित होति समाधि है, जहां जहां मन जात १३

अर्थ-देहाभिमानके नष्ट होकर परमात्मा के ज्ञान से जहाँ
जात मन जाता है । तहाँ तहाँ ही समाधि है ॥ १३ ॥

इप्सित मनस सर्वं कस्य संपद्यते सुख-
म् ॥ देवायत्तं यत सर्वं तस्मात्सन्तो-
षमाश्रयेत् ॥ १४ ॥

छंद—मन चाहे सुख सकल प्राप्तही, होय अइहि पौ वारी
तिहि ते गइहि सोय नर जिहि ते, देव बइय सब भारी ॥ १४ ॥

अर्थ—मनका इच्छित सब सुख किसरा प्राप्त होतारै
जिससे कि सब देवके आघोन है तिससे संतोष क
आश्रय करे ॥ १४ ॥

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मात-
रम् ॥ तथा यच्च कृत कर्म कर्तारमनुग-
च्छति ॥ १५ ॥

छंद—सहस्रन धेनु मध्यही बछरा, जात मातु बिग जैसे ।
कर्म कियो ओ सो कर्ता के, गमनत पाछ तेसे ॥ १५ ॥

अर्थ—जैसे सहस्र गायोंमें बछड़ा माताके समीप जाना
है । तैस ही ओ किया हुआ कर्म है, सा बत्ता के पीछे
जाता है ॥ १५ ॥

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सु-
खम् ॥ जनो दहति ससर्गाद्भन संगवि-
वर्जनात् ॥ १६ ॥

छंद—अनर्थास्थित कार्यन वर्ती यहै, सुख न जनम बम मोहीं
दहत संगते जन समूह अरु, सग हीन बन मोहीं ॥ १६ ॥

अर्थ—अनर्थास्थित कार्य वर्ती पुरुष को न मनुष्योंमें न
बन में सुख होता है । संसर्ग से मनुष्य दहता है तथा
सगहे त्याग से दहता है ॥ १६ ॥

यथा स्वात्वा रुनित्रेण मृतले वारि वि-
न्दति ॥ तथा गुरुगतां विद्यां शूश्रूषुर-
विगच्छति ॥ १७ ॥

छंद—मृतल यहै जल प्राप्त होता है, सन कुदारीहि जैसे
खेवाकारी शिष्य गुरु की, विद्या पावत तैस ॥ १७ ॥

अर्थ—जैसे कुदाल से खोदने में मृत्तिल में वारि प्राप्त
होता है । ऐसेही शूश्रूषा करनेवाला शिष्य गुरु की विद्या
को प्राप्त होता है । १७ ॥

कर्मयुक्तं पलं पृसां बुद्धि कर्मानुसारि-
णी ॥ तथापि सुधियश्चार्याः सुविचार्य
व कुर्वते ॥ १८ ॥

उद्-पुरुषन कृत अनुसार होत फल, मतिहो कृत अनुसार कारज करत विचार तदपि मर, आय सु विवशवार ॥ १८ ॥

अर्थ—पुरुषों के कर्मानुसार फल होता है, बुद्धि कम के अनुसार होती है । तथापि अदिमान महात्मा भी भली प्र कार विचार कर कार्य करते हैं ॥ १८ ॥

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्य स्वदारे मोजने घ-
ने ॥ त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जप-
दानयो ॥ १९ ॥

उद्-अथ मोहिं संतोष अहहि कृत, धन मोक्षम अरु निज तिय मोहिं । विद्याभ्यास दान अरु जप यहै, उचित तोष कर मो कृत मोहिं ॥ १९ ॥

अर्थ—अपनी स्त्री में, मांजन में, धन में, धर्मों में संतोष कर्तव्य है, विद्याभ्यास में, जप में दान में, धर्मों में संतोष न करना चाहिये ॥ १९ ॥

एकाक्षरप्रदातार यो गुरु नाभिवदते ॥
श्रानयोनिशत भुक्त्वा चाण्डालेष्वामि-
जायते ॥ २० ॥

उद्-इह प्रसरान्तरात् गुरु कहे, करत प्रणाम न ओई ।
 भान यानि शन भोगि हान हे चौडाकर मई सोई ॥ २० ॥

अर्थ-ओ एक अक्षर सिलान वाले गुरुका प्रमाण नहीं
 करता । वह कुत की सी योनि भोगकर चौडाओं में जम्प
 करता है ॥ २० ॥

युगाति प्रचलेन्मेरु कल्पति सप्तसागरः
 साधव प्रतिपन्नार्था न चलति कदाच
 न ॥ २१ ॥

उद्-चलित मरु कल्पान् होत अरु, सागर सप्त चलेत
 कल्पान् ॥ अहिं न चलित होत बबड़ पर, साध्व प्रतिपन्न विह
 जन धात ॥ २१ ॥

अर्थ-युगान्त में सुमेरु चलायमान होगा, कल्पान्त में सप्त
 सागर चलायमान होऔयगे प्रतिष्ठा किये अर्थ वाले साधु क-
 भी चलायमान नहीं होत ॥ २१ ॥

इति श्री पाण्ड्य जीतो शिवदास पौण्ड्य,

विरचित भाषाटीकायां

प्रपादशाब्दार्थः १३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभा-
षितम् ॥ मूढैः पापाणस्वन्देषु रत्नमख्या
विधीयते ॥ १ ॥

बोहा—अन्न वारि भाषण शुभग, महि त्रय रत्न प्रधान ।
खड पखानन महुँ करत, रत्न विधान अधान ॥ १ ॥

अर्थ—जल, अन्न; तथा अच्छा भाषण पृथिवीमें तीन रत्न हैं,
ज्ञानहीनों पत्थरके लड्डोंमें रत्नोंकी संख्या विधान की है ॥ १ ॥

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि दे-
हिनाम् ॥ दारिद्र्यरोगदुःखानि बन्धनव्य-
सनानि च ॥ २ ॥

बोहा—आत्म दोष तरु फल अहहि, तमघारिनि यद्दरोग
दारिद्रता बन्धन तथा, जगत व्यसन अरु शोग ॥ २ ॥

अर्थ—दारिद्रता, राग तथा दुःख, बन्धन और व्यसन, यह वेद
पारियोंके अपम अपराध रूखी वृक्षके फल हैं ॥ २ ॥

पुनर्वित्त पुनर्मित्र पुनर्भार्या पुनर्मही ॥

एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुन पुन.३

बोद्धा—घनपुनि तियपुनि धरणिपुनि, मित्र पे रि है जाँय
यहसब किरिके मिलतपर, मिलत देह पुनि नाँहि ॥ ३ ॥

अर्थ घन फिर होजाता है, मित्र फिर होजाते हैं । स्त्री फिर
होजाती है । पृथ्वी फिर होजाती है ॥ यह सब फिर मिल जात
है ॥ शरीर बारबार नहीं मिलता ॥ ३ ॥

बहुना चैव सत्वानांसमवायोरिपुजय
वर्षाधाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते ४

बोद्धा—रिपुन जय है जात है, यह जीवन समुदाय ।
बारिद वर्षा धार धर, तृणसन राँकयो जाय ॥ ४ ॥

अर्थ—बहुतसे जीवोंका समुदाय शत्रुको जीतनेवाला होता
है वर्षा की धारा धारण करनेवाला मघ तृणोंसेभी निवारण
किया जाता है ॥ ४ ॥

जले तैल खलं गृह्य पात्रे दान मनाग-

पि ॥ प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं
वस्तुशक्तिः ॥ ५ ॥

(छंद) तब बारि मैं दानपत्र मैं, बानी ग्रन्थ गँवार ।

शास्त्र प्राप्त मैं वस्तु शक्तिः, स्वयं छंदत विस्तार ॥ ५ ॥

अर्थ—जहमें लेख, दुष्टपुरुषमें : स वात, पादम दान बुद्धि
प्राप्तमें शास्त्र घोड़ा आ हो । ता वस्तुकी शक्तिक अनुसार आप
ही विस्तारको प्राप्ति होता है । ५ ॥

धर्माख्याने श्मशाने च रोगिणा या
मतिर्भवेत् ॥ सा सर्वदेव तिष्ठेत्का न
मुच्येत बंधनात् ॥ ६ ॥

छंद—धर्मक था मैं अरुमसान मैं, रोगिन जो मति होय ।

तौ न होय जग बंधमुक्तको, रहहि सदा जो सोय ॥ ६ ॥

अर्थ—धर्मके आख्यानेमें, श्मशानमें, और रोगियोंकी जो
मति होती है । जा वह सदाही स्थित रहे । ता सबारेके बंधनसे
कोन नहीं मुक्त होगा ॥ ६ ॥

उपज्ञपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृ-

शी ॥ तादृशी यदि पूर्वं स्यात्कस्य न
स्यान्महोदय ॥ ७ ॥

उद्-पश्चात्ताप भये ते मर गी, बुद्धि होती है ऐसी ।
बैभव हाथ महान न बाको, प्रथम होय जो बेसी ॥ ७ ॥

अर्थ-पश्चात्ताप के उत्पन्न होनेपर ऐसी बुद्धि होती है
बेसी जा पहले हा । तो वि सीवा महान बैभव न हागा ॥ ७ ॥
दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये
नये ॥ विस्मयो नहि कर्तव्या बहुरत्ना
वसुधरा ॥ ८ ॥

उद्-नहीं करन आश्चर्य चरित कृत, विमल शूरता तप कददान
नीति तथा विज्ञान मौं है, बहुधा समुक्त रत्न महान ॥ ८ ॥

अर्थ-दान में तप में, शूरता में, विज्ञान में, विनय में, नी-
ति में आश्चर्य नहीं करना चाहिये । क्योंकि धृष्टी महान
रत्न पारिनी है ॥ ८ ॥

दूरस्थाऽपि न दूरस्थो यो यस्य मन सि-
स्थित ॥ यो यस्य तद्दये नास्ति स-
मापस्थाऽपि दूरत ॥ ९ ॥

दोहा—जो जाके मन माँहि है, दूरि दूरि नहिं तीन ।
 वह समीप रहि दूरि अति, नहिं जिहिके मन जीन ॥
 अर्थ जो जिसके मन में स्थित है वह दूर होने पर भी
 दूर नहीं है । जो जो जिसके हृदयमें नहीं है । वह समीप
 स्थित भी दूर है ॥ ९ ॥

यस्माच्च प्रियमिच्छेत्तु तस्य वृथात्सदा
 प्रियम् ॥ व्याधो मृगवध गंतु गीत गा-
 याति सुस्वरम् ॥ १० ॥

उद—कहहि सदाप्रियताहि मरादाजहि, सन प्रियकी आसा
 ग वत व्याधा गीत मधुर स्वर, जात मृगा हित मात १० ॥
 अर्थ—जिसके प्रियकी इच्छा करे, जिसका निरन्तर प्रिय
 करे ॥ मृगके मांस को खाता हुआ व्याध मधुर स्वर से
 गीत गाता है ॥ १० ॥

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फल-
 प्रदा ॥ सेव्यतां मध्यभागेन राजा व-
 हिर्गुरु स्त्रिय ॥ ११ ॥

दोहा—कारण नाश समीप अति, फल दूरिअतिमाहि

मध्य भाग नृप सेइये, गुरु पावक निय कहि ॥ ११ ॥

अर्थ—बहुन सपीष हातन बिनागके देव होने हैं । बहुतदूर होनेम फलदायक नहैं ॥ इसस राजा अग्नि, तथा गुरु तथा स्त्रियोकी पण्यभागसे सेवाकरना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्निराप स्त्रियो मूर्ख सर्पो राजकुलानि च ॥ नित्य यत्नेन मेव्यानि सद्य प्राणहराणि पद ॥ १२ ॥

दोहा—अग्नि धारि तिय मूर्ख अहि, प्राण विनाशनहार । यह पट सेइय यल सो, तरतहि वश भुवार ॥ १२ ॥

अर्थ—अग्नि, जल, स्त्री मूर्ख, सर्प तथा राजकुलके लोग । यह छह दुस्मन्ही प्राणोंके होनेवाले हैं ॥ इससे यत्नसे सेवने चाहिये ॥ १२ ॥

स जीवति गुणा यस्य यस्य वर्म स जीवति ॥ गुणवर्मविहीनस्य जीवित निष्प्रयोजनम् ॥ १३ ॥

दोहा—वर्म जाहि महै जियतसो, गुण जिहि जीवत सोय

हीन धर्म गुण पुरुषको, जियव व्यर्थैश होय ॥१३॥

मरि-नबिपते गुण है वह जोविन है निवक्त धर्म है वह
जोविन है गुण तथा धर्म विहीन पुरुषका जीव। भ्यवे ॥
यदीच्छास वशोर्कर्वु जगदेकेन कर्मणा
॥ पुग पंचदशास्येभ्यो गां चरतीं नि-
वारय ॥ १४ ॥

दोहा-एकहि कृप सन जगन कहैं, करन सहन वश जोय
अमत पंचदश प्रयम इन रोकाहैं मति कहैं, सोय ॥१४॥

अर्थ-जो एच्छा करी सवार वश करनेकी इच्छा करता
है, वह यदिहैं इन पञ्चाशैं विचारग करीहैं बुद्धिहीन नि-
वारण करे ॥ १४ ॥

प्रस्तावसदृश व, वय प्रमावसदृश प्रि-
यम् ॥ आत्मशक्तिसमं कोपं यो जाना
ति सपण्डित ॥ १५ ॥

दाहा-वाक्य प्र । ग समान ३-रु प्रिय प्रमाव समजोय
क्रोध आत्म सम जानजो, अहहि सो पंडित सोय १५

अर्प-अर्पणक मयाम पात्राय प्रभावक सहाय त्रिप, अपनी
 योहि मयार काव जा जायग ११ इह पंडित हे ॥ १५ ॥
 एत एतो रक्षार्थम्नु त्रिग्रा भवति वी-
 क्षित ॥ कण्ठप कामिनी मांस योगि-
 मि कामिमि श्वभि ॥ १६ ॥

उद-हात पदाय एतत्रय त्रिपि श्वे, छत्रो पात्रयपु स्तान
 कापी । पत्र नास्ति जात्या यागिन मृतक समान ॥ १६ ॥
 अर्प-रक्षार्थं पत्राय यागिणो न मृतक रूपस्य, कामिणो न
 स्त्री करणे कुक्षो न पादकरस्य, एव तीत प्रताका होता हे
 दता हे ॥ १६ ॥

सुसिद्धमौषध धर्म गृहचिद्र च मैथुन
 कुभुक्त कुश्रुत चैव मार्तिमान्न प्रकाश-
 येत् ॥ १७ ॥

१ दोहा-सिद्धि औषधो छिद्रग्रह, रति अरु असन मलीन
 श्रान्ति नष्ट यथ धर्म कटै, प्रगट न करहि प्रवीन १६
 अर्थ-छिद्र औषध हा. घनका, गृहक छिद्र हा, स्त्रीमंडल

निम्नित भोजनको, चुनेहुये पुरे बचनको, मतिपान, प्रकाश
न करे ॥ १७ ॥

तावन्मौनेन नोयन्ने कोहिः शैश्चैव वा-
सराः ॥ यावत्सर्वजनानन्ददायिनी वा
क् प्रवर्तते ॥ १८ ॥

दोहा—पिक्ते सबलग मौनते; दिवस बिताये जात ।

जबलग सबजम मोदकर, होत गिरा सृद्ध प्राप्त ॥ १७ ॥

अर्थ—कोपिछो द्वारा सबतण दिन मौमताछे बिताये जात—
है । जबतक सब पुरुषोंको आनन्द देनेवाली वाणी प्राप्त
होती है ॥ १८ ॥

धर्म धन च धान्य च गुरोर्वचनमपि
धम सुगृहीत च कर्तव्यमन्यथा तु न
जीवाति ॥ १९ ॥

दोहा—धर्म वचन गुरु धान्य धम, औपधि भेले प्रकार ।

गृहण बीजिय ठ यथा, होत प्राण रंहार ॥ १९ ॥

अर्थ—धर्म, धन, तथा धान्य, और गुरु वचन तथा और

पक्षि भी सम्पन्न गृहण करना चाहिये । अन्ध्या प्राण-हानि
होती है ॥ १९ ॥

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्
कुरुपुण्यमद्वोरात्र स्मरनित्यमनित्यतः

दोहा—खल रुग तजकर साधु रुग, पुराण कीजिये
नित्य।नित्य ईश सुमिरन करहे, लहि द्वि देह अनित्य

अर्थ—दुर्जन दुष्टबोली संगतिबो तज, साधुबोली संगति
बा सेवमकर, दिनरात पुण्यकर, इस अनित्य शरीरसे नित्य
ईशरका स्मरणकर ॥ २ ॥

इति श्री बाणवचनाथो शिवदास पांडव कृत

भाषाटीकायां चतुर्दशाध्यायः ॥ १४ ॥

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तु-
षु ॥ तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभ-
स्मलेपने ॥ १ ॥

दोहा—द्रवीभूत चित्त दयाते, सब प्राणिन महैं जाहि ।
बाद मरम ते मुक्ति से, जटा ज्ञान ते साहि ॥ १ ॥

मर्च-सर्व प्राणिघोमें दयासे जिसका चित्त द्रव्यमूत है ।
 उसको दानसे, मोक्षसे तथा जटा तथा भस्मलेपनसे स्वयं ।
 एकमेवाक्षर यस्तु गुरु शिष्यं प्रबोध-
 येत् ॥ पृथिव्यां नास्ति तद्व्यय यद्वत्त्वा
 चानृणी भवेत् ॥ २ ॥

दोहा-इक अक्षर उपदेशही, शिष्य कौहिं गुरु जौन ।
 उक्कण होय वै जाहि कहैं, द्रव्य न महि महें, तौन ॥ २ ॥

मर्च-जो गुरु शिष्यका एक मन्त्रही उपदेश करता है ।
पृथ्वीमें वह द्रव्य नहीं है । जिसको देखकरभी शिष्य उक्कण
होनाय ॥ २ ॥

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रति-
 क्रिया ॥ उपानन्मुखभगो वा दूरतो वा
 विसर्जनम् ॥ ३ ॥

दोहा-कैंटि को अरु खलमको, प्रतिफल उभय विधान
 दूरेहि ते त्यागन तथा, मुख मर्चन पदप्रान ॥ ३ ॥

मर्प-दुष्टोंका, कांटोंका प्रतिकर दो प्रकारसे ही है । पहले
१ मुस में जन करना, या दूरसे त्याग देना ॥ ३ ॥

कृचैलिन दन्तमलोपधारिण बव्हाशि-
न निष्ठुरभापिण च ॥ सूर्योदये चास्त-
मिते शयानं विमुचति श्रीयदि चक्र-
पाणि ॥ ४ ॥

[उद] सोबमहात् प्रातः संध्या अरु, बहुत बचबहु आहारी ।
मरुदुत दंत कुचैलिहि त्यागत, रमा चक्र पदि धारी ॥ ४ ॥

मर्प-महीन बस्य धारण व रम बासेबदे, महीन दौत बाछे
को, बहुत सान बाछे का, निष्ठुर-पण करने हारे को सूर्योद
य तथा सूर्यास्त में सोनेबाछे को दृष्टी त्यागदेती है बाछे
चक्रपाणि भी हों ॥ ४ ॥

त्यजति मित्राणि धनैर्विहीन दाराश्च
भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च ॥ त चार्थवत पु-
नराश्रयते ह्यर्थो द्विलोके पुरुषस्य बंधु
उद-सेवक नारि मित्र गौधन जन, धन विहीन जन कहैं तामे देत

कोट्य मीहि मर वंधु अरहि धन, धन युन तिहि पुनि माय्य ह्य

अर्थ—मित्र धन सहित को त्याग देते हैं। और शत्रु, सब
और मित्रवर्ग भी त्याग देते हैं। और धन सहित सबका
फिर माय्य करते हैं। लोक में धनही पुरुष का बंधु है ॥ ५३ ॥

अन्यायोपार्जित द्रव्य दशवर्षाणि ति-
ष्ठति॥ प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलं च वि-
नश्यति ॥ ६ ॥

दोहा—दश सम्पत्तियों रहत है, द्रव्यार्जित अन्याय ।
प्राप्त वर्ष दश एक मूँ, मूल सहित नष्ट जाय ॥ ६ ॥

अर्थ—अन्याय से उपार्जित किया द्रव्य दश वर्ष तक रहता
है। पचाहवें वर्षके प्राप्त होते मूल सहित नष्ट हो
जाता है ॥ ६ ॥

अशुक्त स्वामिनो युक्तं युक्तं नीचस्य दू-
पणम् ॥ अमृत रादवे मृत्युर्विष शकर-
मृपणम् ॥ ७ ॥

[छंद] नीच स्वामी अयोग्य होत कटु, अशुचित माय्यदिहोत

पहान भयो राहुकह भमिय मृत्यु सव, तैव भूषण शंकर
भगवान् ॥ ७ ॥

अर्थ-मयोरथ थी मयर्थों को योग्य है। योग्य भी श्री
॥ मय्य को वृषण है ॥ राहु को मनु मृत्यु रूप हुआ
॥ या शंकर को विष भूषण है ॥ ७ ॥

तद्भोजन यद्विजमुक्तशेषं तत्सौत्तृदं य-
त्क्रियते परस्मिन् ॥ सा प्राज्ञता या न
करोति पाप दम्ब विनाय क्रियते मधर्मः

(छंद) वही भजन है शेष दिजन जो, सौत्तृद कह कर पर
सन जोय। जोन दम्ब विन धर्म महारि सो, जो भरकर पाप न
पातिवा सोय ॥ ८ ॥

अर्थ-आत्मणोकि भोजन स शेष जो है, वही भोजन है।
दूसरे के हेतु किया जाता है, वही सौत्तृद है। पुद्धिमानता
बड़ा है जो पाप नहीं करती। विना दम्बके जो किया जा
ता है वही धर्म है ॥ ८ ॥

मणिल्लुठति पादाम्ने काच शिरसि धा-

र्यने ॥ क्रयविक्रयबेलायां काचकाचो
मणिर्मणिः ॥ ९ ॥

बोझा—मणि छोटत पद अग्र मई, घरी जात शिरकोंब
क्रय अरु विक्रय के समय, मणि मणि कौं बहि कौं बहि

अर्थ—पौव के अग्रभाग में रत्न छोटता है । कौब शिर
पर धरण किया जाता है परंतु बँबने तथा मे स छेने के समय
कौब कौब ही है तथा पणि मणि हो है ॥ ९ ॥

अनंतशास्त्र बहुलाश्च विद्या अल्पश्च
कालो बहुविघ्ना च ॥ यत्सारभूतं
तदुपासनीयं हंसो यथा क्षीरमिवां
बुमध्यात ॥ १० ॥

[छंद] विद्या अमित अनन्त शास्त्र है, अवसर लघु अथ
विघ्न अपार । इस शारे स क्षीर छेउ मिमि सेवन करहु शेष
जो सार ॥ १० ॥

[अर्थ] शास्त्र अनन्त हैं तथा विद्या भी अनन्त है ।
तथा समय छोटा है और विघ्न बहुत हैं । जो सार हो सो
सवन काना चाहिये । इस अलमें से क्षीर निकाल
लेता है ॥ १० ॥

दूरागत पथि श्रान्त वृथा च गृहमागत-
म् ॥ अनर्चयित्वा यो भुक्ते सर्वे चाढा
ल उच्यते ॥ ११ ॥

उद्-माग शक्ति दूरत आये, वृथा पधारे घाम मझार ।
बिन सत्कार करते जो भोजन, कदा जात रहै पंढार ॥ ११ ॥

[अर्थ] दूर से आये मार्ग से थके हुए तथा निष्प्रयोज-
न घर आये को बिना सत्कार दिये जो खाता है । वह
निन्द्य बौद्धाल कहा जाता ॥ ११ ॥

पठति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्य-
नेकशः ॥ आत्मानं नैव जानन्ति दर्वी
पाकरसं यथा ॥ १२ ॥

दोहा-शास्त्रन पढे अनेक करु, पढे चारिहुँ वेद ।

पाक रसहि जिमि करझुकी, जान न आत्म भेद ॥ १२ ॥

[अर्थ] चारों वेदों को तथा बहुत से शास्त्रों को पढ़ते
हैं । और आत्माको नहीं जानते । जैसे करझुकी पके हुए
बदार्थ के रस को ॥ १२ ॥

धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवा
र्णवे ॥ तरत्यधोगना. सर्व उपरिस्था.
पतत्यधः ॥ १३ ॥

बोधा—धन्य नाव विपरीत द्विज, यहि भवार्थिषु संसार
ऊपर चित्त सो गिरत अब, अब चित्त हों पार ॥ १३ ॥

अर्थ—संसार सागर में विपरीत चलने वाली वाह्य रूप नौ
का धन्य है नौके स्थित हुये सब तर जाते हैं । ऊपर में स्थित
होने वाले नीचे गिरते हैं ॥ (इस सूत्र का भावार्थ यह है ?
कि वाह्यों के अपमान कर्तव्यों का नाश होता है तथा
उनसे सब रहने वाले संसार / धर्म से तर जाते हैं ॥ १३ ॥

अथममृतनिधान नायकोऽप्यौषधीना
ममृतमयशरीरं कातियुक्तोऽपि चन्द्रः
॥ भवति विगतरश्मिर्मण्डलं प्राप्य भा-
नोः परसदननिविष्टो लघुत्वं न याति

उद्—अथिष वायव्य ईश अथिष वपु अभवान् अथि रश्मि

ग्रह न राय कोत्रि विदोन होत पर ग्रह मई, राय छह न नहि
को उडुनाय ॥ १४ ॥

मय-ममृत का स्थान भोजविरो का नापरु ममृत
य घीर घीर, कौति युक्त यह बद्रपा सुर्व मंडल में प्राप्त
कर निस्तेज हाता हे वृषा के घर जाकर कोन छुटा
हीं पाता ॥ १४ ॥

अलिरयं नलिनीदलमध्यग कमलिनी
मकरदमदालस. ॥ विधिवशात्परदेश-
मुपागतःकुटजपुष्परस बहु मन्यते १५

उद्-यह रहि भ्रमा मय्य कमलिनि यह कमलिनि मद न
ग मलमाय विधि वशात् परदेश जाय सो, मानत कुटज मैथ
मरिनाय ॥ १५ ॥

भय-यह भयर कमलिनीके मय्य में प्राप्त होकर कमलि
नी के मकरद क मद में आससी रहता था प्रारब्ध वशात् पर
देश को प्राप्त हुआ कौरियाके फूलके रसको बहुत मानता हे १५
पीत-शुद्धेन तातश्वरणतलहतो वल्लभो
येन ऐपादावाल्यादिप्रवर्ये. स्ववदनवि

वरे धार्यते वैरिणी मे गेहं मे छेदय-
न्ति प्रतिदिवसमुमाकांतपूजानिमित्तं
तस्मात् खिन्ना सदाह द्विजकुलनिलयं
नाथ युक्तं त्यजामि ॥ १६ ॥

(छप्पय] जौन क्रुद्धहै अमित, पान पितु करे डारयो
जौन क्रुद्धहै अमित, कात पीतस को मारयो ॥

वर विप्रन मुख विवर, धार्यते मम अरि वानी ॥

करत वास है सदा, परम विधात्री खानी ॥

उमाकान्त पूजा निमित्त, मम ग्रह नित छेदन करत ।
ताते मैं अति खिन्न, वर विप्रन ग्रह परिहरत ॥ १६ ॥

अर्थ—कोबका प्राप्त भिनसे मेरे पिताको पान कर लिया
कोबसे मेरे स्त्री का शरण से लाइन किया ॥ मरु बाध,
जो द्वारा बालकपन से ही अपने मुख रूप विवरमें मेरी वैरि
णी । [सरस्वती] शरण की जाती है-पावती पतिकी पूजाके
निमित्त जो मेरे घरको प्रतिदिन छेदन करते रहते हैं हे नाथ
इस कारण निरंतर भिन्न हुई मैं योग्य माझमें छेदने ग्रहों को
त्यागती हूँ ॥ १६ ॥

वधनानि खलु संति बह्वानि प्रेमरञ्जुक्
तर्वयनमन्यत ॥ दारुमेदनिपुणोऽपि प
दघ्निर्निष्क्रियो भवति पंकजकोशे १७॥

छन्द-वधन निम्नय अपित अहदिवर, प्रेमरञ्जु कृतवधन मोर
निहित काष्ठ भेदमई पुपही, निष्क्रिय कपल कौशमई और
अर्ध-निम्नयकरके बह्वनसे वधन हैं । परन्तु प्रेम रञ्जुका बं
न मोरही है । निम्नके कारण काष्ठके भेदनेमें चतुर और
कपलकलीमें व्यापार रहित होजाता है ॥ १७॥

छिन्नोपि चंदनतरुर्न जहाति गंधं वृद्धो
ऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलांशु ॥ य
त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेश्चु क्षी-
णोपि न त्यजति शीलगुणान्कुलीनः १८

छन्द-प्रीतिरु छिन्न नहिं स्थागत है सुवास ।

वेति न यत्र मई कृत सजे पिठास ॥

बूरो मरान गज स्थागत नहिं सीठा ।

स्थाने कुलीन नहिं क्षीण गुणादि शीठा ॥

वर धार्यते वैरिणी मे गेहं मे छेदय-
न्ति प्रतिदिवसमुमाकांतपूजानिमित्तं
तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं
नाथ युक्तं त्यजामि ॥ १६ ॥

(छप्पय] जीन कुच्छड़े अमित, पान पितुं करि डारयो
जीन कुच्छड़े अमित, कात पीतस को मारयो ॥
वर विप्रन मुख विवर, धार्यते मम अरि वानी ॥

करत वास है सदा, परम विद्याकी खानी ॥
उमाकान्त पूजा निमित्त, मम ग्रह नित छेदन करत ।
ताते मैं अति खिन्न, वर विप्रन ग्रह परिहरत ॥ १६ ॥

अर्थ—कोषका प्राप्त जिनके मेरे पिताको पान कर खिन्ना
कोषके मेरे स्वा १ को धारण से सादन किया ॥ मेह बाध,
जो द्वारा बाधकपम से ही अपने मुख रूप विवरमें मेरी वैरि
णी (सरस्वती) धारण की जाती है परकी पतिकी पूजाके
निमित्त जो मेरे घरको प्रतिदिन छेदन करते रहते हैं वे नाथ
इस धारण निरंतर निमित्त हैं मैं योग्य बाधकी कुच्छड़े वही को
त्यागती हूँ ॥ १६ ॥

यनानि खलु सति वह्निनि प्रेमरज्जुकृ
तव वनमन्यत ॥ दारुभेदनिपुणोऽपि प
दधिनिष्क्रियो भवति पकजकोशे १७॥

पद-रूपेण निम्बपत्रं मपिनं प्रदिव्यं, प्रमत्तं छत्ररूपेण मोर
निदिनं वाह्यं भद्रमहं पुष्यो निष्क्रियं यमकं बौध्महं मोर
भद्र-निम्बपत्ररक्तं बहुनयं वपनं दं । परन्तु प्रयत्नं रक्तं वा
न मोरहं दे । निष्क्रियं वाह्यं वाह्यं भद्रमहं यमकं मोर
प्रदिव्यं दे । व्यापारं निदिनं वाह्यं दे ॥ १७ ॥

लिङ्गापि चरननर्कं जहाति गधं वृद्धो
ऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम् ॥ य
त्र पित्रो मधुरतां न जहाति चेतुश्चो-
णापि न त्यजति शीलगुणान्कुलीन १८

अर्थ—काटाहु माभी धवन वृत्त गैबको नहीं त्यागता । इव
गजराजभी छीलाको नहीं त्यागता ॥ यत्नमे पेरीछुरे ईत रा
को नहीं त्यागती कुकीर पुरुष सीण हानेरमा श्रीराम
पुण्योको नहीं त्यागते ॥ १८ ॥

उर्व्या कोपि महि रसो दोभ्या धृतो
लीलया तेन त्वं विदि मृगले च विदि-
तो गोवर्द्धनोद्धारक ॥ त्वां त्रिलोक्यधर
वहामि कुचयोरग्रे न तद्रण्यते किंवा
केशव मापणेन बह्वना पुण्यैर्यशो ल-
भ्यते ॥ १९ ॥

उ०—महि मंदल विव कोठ एक, लघु पर्वत ताही ।

दोऊ करन सठाय लिपो, केशव लीलाही ॥

ताते सुरगण लोक तथा यदि मर्त्ये अहाना ।

गामधनपर विदित नाम तुय हे भगवाना ॥

परत कुबाधन तुपरिये, गनत न कोठ तिदि विजगवर ।

मत्ति भागलत हे कहा, पुण्यदि ते पश कहत वर ॥ १९ ॥

अर्घ्य-पूज्यापर कोई एकमत्यन्त छोटी पवित्र छीसापूर्वक
पारण कर लिया । इसीसे तुम स्वर्गमें तथा भूतलमें गार्भपन
पारक विदित हो । जिसकी पारण करनेवाले तुमको अपने
लोकोंके कल्याण में पारण करता हूँ । सो मही गिना जाता ॥
६६८५ । ६६८६ ॥ ६६८७ ॥ ६६८८ ॥ ६६८९ ॥ ६६९० ॥
इति श्रीपादयनीको शिवदास पौंड्य कृत भाषा-

टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

न ध्यात पद-शिवस्य विधिवत्ससार
विच्छिन्नये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपट्ट-
धर्मोऽपि नोपार्जित ॥ नारिपीनपयो
धरोरुगुल स्वप्नेपि नालिगित मातु-
केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्
(छप्पय] मयसागर ते कुत्त इत विविधत गतिवार्ध ॥

ध्यान न कीनों चरण कमल प्रभु जन सुखदाई ।
 खोल न स्वर्ग कपाट द्वार महुँ निपुण सुधर्म ।
 ताके संशित हेतु कियो नहिँ बहुत शुभकर्म ॥
 तियगनके कुच पुष्ट शुभ, उरु आहिँगन न कियो
 यौवन जमनी हेतु बच, हम कुठार को वपु कियो ॥

अर्थ-सुखारसे कुछ होनेके निमित्त विधिपूर्वक इन्हाके चरणोंका ध्यान न किया स्वर्गद्वारके कपाट खोलनेमें निपुण धर्म भी उपश्रित न किया कृष्ण के बन्नों पुष्ट रसम तथा जंघाओंको स्पर्शमेंभी आहिँगन न किया इस बेवस माताके यौवनरूप धमके छे, नेके छिपे कुठाररूप हुये ॥ १ ॥

जल्पति सार्द्धमन्येन पश्यत्यन्य सवि-
 भ्रमा ॥ तद्दये चिंतय त्यन्य न स्त्री-
 णामेकतो रति ॥ २ ॥

दोहा-मोग दृष्टि पर बहँ लखति, आनरुग दत्तराति।
 इदय त्याग करु को गही, इक प्रेमिनिमिथि जाति ॥ २ ॥

मर्य-दूसरे के संग बात करती है । दूसरे को विस्वास पूर्व
क देसती है ॥ हृदय में मोर का ध्यान करती है । स्त्रियों
की एकसे प्रीति नहीं ॥ २ ॥

यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मायि का-
मिनी ॥ स तस्या वशगो मृत्वा नृत्ये-
त्कीडाशकुंतवत् ॥ ३ ॥

दोहा-यह तिय मम रत मोह से, मानस खल इमिजौना
कीडा विहग समान छठ, नाचत तिय घश तान ॥ ३ ॥

अर्थ-यह स्त्री मुझ से प्रसन्न है, जो मूढ़ मोह से ऐसा मान
वादे । वह उस स्त्रीके बशीर्ष होकर फाटा पत्ती के समान
माचता है ॥ ३ ॥

कोऽर्थान्प्राप्य न गर्वितो विषयिण क-
स्यापदोऽस्तगता स्त्रीभि कस्य न ख-
दित भुवि मन को नाम राजप्रिय. ॥
क कालस्य न गोचात्वमगमत्कोऽर्थी

ध्यान न कीनों चरण कमल प्रभु जन सुखदाई ।
 खोळ न स्वर्ग कपाट द्वार मई निपुण सुधर्म ।
 ताके संखित हेतु कियो नहिं कहू शुभकर्म ॥
 तियगनके कुच पुष्ट शुभ, उरु आलिंगन न कियो ।
 यौवन जमनी हेतु बस, हम कुठार को वपु छियो ॥

अर्थ-संसारके मुक्त होनेके निमित्त विधिपूर्वक इच्छाके पर-
 नोंका ध्यान न किया स्वर्गद्वारके बचाव सोचनेमें निपुण धर्म
 भी उपजित न किया छत्रके दानों पुष्ट रहन तथा जंघाठोंको
 स्वयंभी आलिंगन न किया हम बेबल माताके यौव-रूप
 धमके छे मेक छिये कुठाररूप हुये ॥ १ ॥

जल्पति सार्द्धमन्येन पश्यत्यन्य सवि-
 क्रमा ॥ तद्दये चितय त्यन्य न स्त्री-
 णामेकतो रति ॥ २ ॥

दोहा-मंग दृष्टे पर मैं सुखति, आमरुग दतराति ।
 हृदय ध्यान ऊरु को नहीं, दृक् प्रेक्षितिय जाति ॥

नेर्मिता केन न दृष्टपूर्वा न श्रूयते
मयी कुरंगी ॥ तथापि तृष्णा रघु-
नस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ५

रचित न काहू प्रथम लखी नहि, सुनी न कंचन मृगीशरीर
काल विपरीति दाति मति, भइ तथापि तृष्णा रघुबीरस्य ॥
-किसी बरके भी निर्माण न की गई । न पहिले देखी न
। गई, की सुवर्ण की हरिणी होती है । तथापि रामचंद्रजी
तृष्णाहुई । विनाश काल में विपरीत बुद्धि दाती है ॥ ५ ॥

पौरुत्तमतां यांति नोच्चैरामनसस्थि-
। प्रामादशिखरस्थोऽपि काक किं
रुडायते ॥ ६ ॥

हेहा-गौरवता गुणते लहत, आसन नेरह नौहिं ।

अ गायस गरुडदो, देवल मस्तक मौहिं ॥ ६ ॥

ण से उत्तमता का प्राप्त होते हैं, आसन पर
नहीं हान करके ऊपर बैठे हुमा कोमा

गतो गौरवँ को वा दुर्जनदुर्गुणेषु पति
त क्षेमेण यात पथि॥ ४॥

(कवित्त) मयो अभिमानी नहिँ पाय धन कौन जग,
कौन विषयी की सख बिपति नशानी है ।
खंडित मयो न मन काको जग नारिन ते,
वृष गन केरो जग कौन प्रिय प्राणी है ॥
फालकी अगाधरता पायो जग कौन ऐसो,
मयो यहिँ जगत प्रपन्न वीध' शानी है ।
पाइ गुरुताई कौन मगम जगत पंथ,
कुशल पधारो कान मीघ गुण मानी है ॥ ४ ॥

अध-धन या पावर कौन अभिमानी न हुआ । विष
विषयी या मापणिये अस्त हई ॥ मृतक में प्रियों द्वारा
विषवा मन से दन न हुआ । राभावा प्रियकौन दे सका
बा पावरता को कौन प्राप्त नहीं हुआ । कौन मीगम बा
हा गुरुतावा प्राप्त हुआ । या हठोप अवशुणों में पहकर
दण्ड पु र ससार माग में कौन गया ॥ ४ ॥

न निर्मिता केन न दृष्टपूर्वा न श्रूयते
हेममयी कुरगी ॥ तथापि तृष्णा रघु-
नन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ५

अर्थ-रचित न काहु प्रथम लखी नहि, सुनी न कंचन घृणीशरीर
माद्यकाल विपरीति हाति मति, भइ तथापि तृष्णा रघुबीरा ॥ ५ ॥
अर्थ-किसी करके भी निर्माण न की गई । न पहिले देखी न
सुनी गई, की सुवर्ण की हरिणी होती है । तथापि रामचंद्रजी
को दुष्माहूँ । विनाश काल में विपरीत बुद्धि हाती है ॥ ५ ॥

गुणैरुत्तमतां यांति नोच्चैरामनसंस्थि-
ताः प्रामादशिखरस्थोऽपि काक किं
गरुडायते ॥ ६ ॥

दोहा-गौरवता गुणते रुद्धत, आसन तेजह नहि ।
बैठि न वायस गरुडहो, देवल मस्तक मोंहि ॥ ६ ॥

अर्थ-गुण से उत्तमता का प्राप्त होत है, आसन पर
बैठन से प्राप्त नहीं हात । मरुके ऊपर बैठा हुआ फोमा
क्या गरुड हो सका है ॥ ६ ॥

गतो गौरवें को वा दुर्जनदुर्गुणेषु पति
त क्षेमेण यात पथि॥ ४॥

(कविच) भयो अभिमानी नहीं पाय धन कौन जग
कौन विषयी की सख विपति नशामी है
खंडित भयो न मन काफो जग नारिन ते
नृप गम केरो जग कौन प्रिय प्रानी है ।
कालकी अगोचरता पायो जग कौन ऐसी
भयो यह जगत प्रपञ्च धीरे ज्ञानी है
पाइ गुस्ताई कौन मगन जगत पंथ,
बुझल पधारो ध्यान नीच गुण मानी है॥ ४॥

अध-धन वा पावर कौन अभिमानी न हुआ । निर-
विषयी वा अपविषये अस्त हू ॥ भूतल में श्रियो द्वारा
विपदा मन से दूर न हुआ । रामाय प्रियको न दे सका
वा गारता को कौन प्राप्त नहीं हुआ । कौन योगन वा
हा गुह्यता प्राप्त हुआ । वा इष्टोक्त भवप्रणो में पहर
हम पू र सता माग में कौन गया ॥ ४॥

न निर्मिता केन न दृष्टपूर्वा न श्रूयते
हेममयी कुरगी ॥ तथापि तृष्णा रघु-
नन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धि ५

छद-रोषत न काहू प्रयम लखी नहिं, सुनी न कंचन मृगीशरीर
नाशकाल विपरीति होति मति, भइ तथापि तृष्णा रघुबीरा ५॥
अर्थ-किसी करके भी निर्माण न की गई । न बहिले देखी न
सुनी गई, की सुवर्ण की हरिणी होती है । तथापि रामचन्द्रजी
से क्षुब्ध हुई । विनाश यात्रा में विपरीत बुद्धि होती है ॥ ५ ॥

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरामनसस्थि-
ता प्रामादगिखरस्थोऽपि काक किं
गरुडायते ॥ ६ ॥

दोहा-गौरवता गुणते बहत, आसन तेजह नहिं ।
बैठि न धायस गरुडो, देखल मस्तक मोंहि ॥ ६ ॥

अर्थ-गुण से उत्तमता का प्राप्त होत है, आसन पर
बैठन से प्राप्त नहीं हान । गरुड ऊपर बैठा हुआ कोमा
हवा गरुड हो गया है ॥ ६ ॥

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि संप
दः ॥ पूर्णोद्भूतिं तथा वंद्यो निष्कलं को
यथा कृश ॥ ७ ॥

दोहा—पूज होत गुण ठाम सब, सम्पत्ति नॉहि महाना
कह पूर्ण छसि बंध तिमि, जिमि द्वितिया छसि मान ॥ ७ ॥

अर्थ—सब स्थान में गुण पूजे जाते हैं। बड़ी बड़ी स
म्वतियों, महीं पूजी जातीं। क्या पूर्ण ब्रह्म सिधही प्रकट
बदना किया जाता है जैसे बरुंके रहित सीण द्वितिया का
बंदना ॥ ७ ॥

परस्तुतगणो यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भ-
वेत् ॥ द्वाऽपि लघुतां याति स्वयंप्रख्या
यितैर्गुणैः ॥ ८ ॥

उद्द—अपरन जिहि गुण कीन प्रशंसा, अगुण गुणी हेआई।
मिअ गुण निअ सुख कथन किये ते, ईअ लघुतां सखुआई ॥ ८ ॥

अर्थ—जो दूसरा ने जिसके गुणों की स्तुति की है वह
निर्गुण भी गुणी हो जाता है। अपने आप कथन किये
गुणों से ईश भी लघुता को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणा यांति मनोज्ञ-
ताम् ॥ सुतरा रत्नमाम्नाति चामीकर-
नियोजितम् ॥ ९ ॥

[उद्] शान्ति कीर्ति प्राप्त गुण प्राप्त, अतिशय सुन्दर ताई ।
सुतरा हीरा जड़ित लहत है, सुन्दरता अपि कोई न ॥ ९ ॥

अर्थ—शान्ति को प्राप्त हुए गुण मनोहरता को प्राप्त होते
हैं। सुवर्ण व जड़ा हुआ हीरा वस्तुतः शोभाका प्राप्त होता है ॥ ९ ॥
गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येका निरा-
श्रय ॥ अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्र-
यमपेक्षते ॥ १० ॥

दोहा—विन आधार दुख लहत अकेली,

गुण सर्वज्ञ सु ईश समान ।

लहत सदा आश्रय कथन को,

मौल्यवान् अनि रत्न महान् ॥ १० ॥

अर्थ—जुनों में सर्वज्ञ परमेश्वर के प्रधान भी, अकेली

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि संप
द्विः ॥ पूर्णेंद्रु किं तथा बंधो निष्कलं को
यथा कृश ॥ ७ ॥

दोहा—पूज होत गुण ठाम सब, सम्पति नाँहि महाना।
काह पूर्ण चासि बंध तिमि, निमि द्वितिया चासि मान ॥ ७ ॥

अर्थ—सब स्थान में गुण पूजे जाते हैं। बड़ी बड़ी स
म्पतियों में भी पूजी जाती हैं। क्या पूर्ण बंध तिसरी प्रकार
बधना किया जाता है जैसे बल्लभ रचित सीण द्वितिया का
बधमा ॥ ७ ॥

परस्तुतगणो यस्तु निर्गणोऽपि गुणी भ-
वेत् ॥ इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयंप्रख्या
यितैर्गुणैः ॥ ८ ॥

उद्—अपरन जिदि गुण बीन प्रशंसा, अगुण गुणी हेनार्ह।
निम गुण निम लघु बधन किये ने, इन्द्र सद्धत सधुताइ ॥ ८ ॥

अर्थ—जो इतरा में जिसके गुणों की स्तुति की है वह
निर्गुण भी गुणी हो जाता है। अपने आप बधन किये
गुणों से इन्द्र भी लघुता को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणा यांति मनोज्ञ-
ताम् ॥ सुतरा रत्नमार्भाति चामीकर-
नियोजितम् ॥ ९ ॥

[छंद] इानी बौद्धि प्राप्त गुण प्राप्त, अतिशय सुंदर ताई ।
सुतरा हीरा अति सुंदर है, सुंदरता अधिकार्थ ॥ ९ ॥

अर्थ—इानी को प्राप्त हुए गुण मनोज्ञता को प्राप्त होते
हैं। सुवर्ण से बड़ा हुआ हीरा अत्यंत शोभाका प्राप्त होता है ॥ ९ ॥
गुणै सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निरा-
श्रय ॥ अनर्थमपि माणिक्यं हेमाश्र-
यमपेक्षते ॥ १० ॥

दोहा—बिन आधार दुख बहस अकेलो,

गुण सर्वज्ञ सु ईश समान ।

बहस सदा आश्रय कथन को,

मौल्यवान अति रत्न महान ॥ १० ॥

अर्थ—गुणों में सर्वज्ञ परमेश्वर के समान भी, अकेला

आभयंहीन दुःखी हाता है । बड़े मोल का भी रत्न सुवर्ण
के आभय की इच्छा करता है ॥ १० ॥

अतिक्लेशेन ये अर्था धर्मस्यातिक्रमेण
तु ॥ शत्रूणां प्राणिपातेन ते अर्था मा
भवन्तु मे ॥ ११ ॥

बादा—अति दुःख से अति क्रमण धर्म से,

प्राप्त होनि है सम्पत्ति जौन ।

शत्रु वर्ग कहैं नमन किये ते,

मिलहि मोहिं जनि सम्पत्ति तौन ॥ ११ ॥

अर्थ जो धन अत्यंत क्लेश से, तथा धर्म के अति क्रमण
करने से, तथा शत्रुओं को प्रणाम करने से प्राप्त होते हैं । वे
जन मेरे निमित्त न होयें ॥ ११ ॥

किं तथा क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव के-
वला ॥ या तु वेश्येव सामान्या पथिके
रपि भुज्यते ॥ १२ ॥

बोहा—तिहि लक्ष्मी कहैं करियका जौन धनू सम माहि ।
या वेश्या वन सर्व प्रिय, रमा पथिक सन जाहि ॥१२॥

अर्थ—उस लक्ष्मी से क्या किया जाय, जो केवल धन से
समान है । या जो वेश्या के समान सर्व साधारण है जो पथिक
जनो से भी भोगी जाती है ॥ १२ ॥

धनेषु जीवितव्ये च स्त्रीषु चाहाम्कर्म
सु ॥ अतस्ता प्राणिन सर्वयाना यास्य-
तियांति १३ ॥

बोहा—धन में जीवन तियन में, भोजन कारज माँहि ।
असन्तुष्ट सब जन गये, जान सकल अरु जाँहि ॥१३॥

अर्थ—धन में जीवन में, तथा भोजन के लिये वे सब प्राणी
परतुष्ट गये, जाते हैं । और जाँच ॥ १३ ॥

क्षीयते सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रि-
या ॥ न क्षीयते पात्रदानमभय सर्व-
देहिनाम् ॥ १४ ॥

दोहा—यश्च होम बलि कर्म अह, नष्ट होत सब दान ।
अमयदान देहिम सकल, नशत न पात्र सुदान ॥ १४॥

अर्थ—यश्च होम बलिदानादि कर्म, तथा सम्पूर्णदान भी
हो जाते हैं । सत्पात्र को दिया हुआ दान, तथा सब देह भक्ति
पोंको अमयदान दान, नहीं भष्ट होता ॥ १४ ॥

तृण लघु तृणात्तूल तूलादपि च याच
क॥वायुना किं न नीताऽसौ मामय या-
चयिष्यति ॥ १५ ॥

उद्—तब ते तृण लघु तूख तृणहीं ते तूलह ते लघु याचक
भाहि । यह माते याचमा परहि जनि, पवन यादिरिपि के
नहि भाहि ॥ १५ ॥

अर्थ—सबसे लघु तृण है । तृण से लघु कई है ॥ और
याचक कई से भी लघु है ॥ यह पवन से क्यों नहीं उड़ाया
जाता । यह समझता है कि यह कुछत याचना करना ॥ १५ ॥

वरं प्राणपरित्यागो मानभगेन जीव-
नात् ॥ प्राणत्यागे क्षणदुःख मानभगे-
दिने दिने ॥ १६ ॥

उद्-मानभंग जीवन भर नहीं पर, प्राण त्याग कर भरई ।
प्राण त्याग छिन देत शोक भर, मानभंग नित भरई ॥ १६ ॥
अर्थ-मानभंग होने से जीवनसे प्राण परित्याग भोग्य है ।
प्राण त्याग के समय सख्त पत्र क्लेश होता है ॥ पर मानभंग
होनेसे प्रतिदिन क्लेश होता है ॥ १६ ॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यति जन्त-
व ॥ तस्मात्तदेक वक्तव्य वचने किं द-
रिद्रता ॥ १७ ॥

उद्-प्रिय भाषण से सुदित बात है सब सब जगत्के प्राणी ।
साते भाषण बोलित कथन सुद्ध, का दरिद्रता बानी ॥ १७ ॥

अर्थ-प्रिय वचन बोलने से सब प्राणी हँसुहा हास है । इसके
कारण वह ही कहना चाहिये । वचन की क्या दरिद्रता है ॥ १७ ॥

संसारकटुवृक्षस्य द्व फले अमृतोपमे ॥
सुभाषित च सुस्वाद सगति सुजने-
जने ॥ १८ ॥

दोहा-अमिय सारस फल उभय कर, यदि कटुसरसंसार ।

दोहा—यज्ञ होम बलि कर्म अरु, नष्ट होत सब दान ।
अमयदान वेदिन सकल, नशत न पात्र सुदान ॥ १४ ॥

अर्थ—यज्ञ होम बलिदानादि कर्म, तथा सम्पूर्णदान शीन हो जाते हैं । उत्पात्र को दिया हुआ दान, तथा सब देव बलि-
पोंको अमयदान दना; नहीं नष्ट होता ॥ १४ ॥

वृण लघु वृलात्तुल वृलादपि च याच
कः॥ वायुना किं न नीताऽसौ मामय या-
चयिष्यति ॥ १५ ॥

छंद—सब से वृण लघु वृल वृण हैं त वृलह ते लघु वाचक
आदि । यह माते याचना करहि जानि, पवन यादिसि मि-
ले नहि जाहि ॥ १५ ॥

अर्थ—सबसे लघु वृण है । वृण से लघु कई है ॥ और
वाचक कई से भी लघु है ॥ यह पवन से क्यों नहीं बहाया
जाता । यह समझता है कि यह कुछसे याचना करेगा ॥ १५ ॥

वरं प्राणपरित्यागो मानभगेन जीव-
नात् ॥ प्राणत्यागे क्षणदुःख मानभगे-
दिने दिने ॥ १६ ॥

उद-मानमेंग जीवन भक्त मर्दि पर, प्राण त्याग कर भरई ।
प्राण त्याग छिन देन शोक अरु, मानमेंग मित दहरई ॥ १६ ॥
अर्थ-मानभग होन से जीवनेसे प्राण पति त्याग भेद है ।
प्राण त्याग क समय क्षण म थ केश होता है ॥ पर मानमेंग
हनेसे प्रतिदिन दृश्य होता है ॥ १६ ॥

प्रियवास्यप्रदानेन सर्वं तुष्यति जन्त-
व ॥ तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने किं द-
रिद्रिना ॥ १७ ॥

उद-प्रिय आपन त मुदिन हात हैं सब क जगतके प्राणी ।
ताते आपन वरित्त वचन मृदु, या दरिद्रता बानी ॥ १७ ॥

अर्थ-प्रिय वचन दाए- स सब प्राणी हेतु होत हैं । इसे
कारण यह ही कहना चाहिय । वचन की वया दरिद्रता है ॥ १७ ॥
ससारकटुवृक्षस्य द्व फले अमृतोपमे ॥
सृभापित च सुस्वाद सगतिं सृजने-
जने ॥ १८ ॥

दोहा-जमिय सारस पण्ड टभय पर, यदि बटुतदससार ।

बधन स्वाद युत प्राम मधुर, संगति सुजम उदार ॥ १८ ॥

अर्थ—संसार रूपी कटु वृक्षके अमृत के समान हो कर
धृष्णादिषु स मधम तथा मले पुरुषों की संगति ॥ १८ ॥

बहुजन्मसु चाभ्यस्त दानमध्ययन त
प ॥ तेनैवाभ्यासयोगेन देहमभ्यस्यते
पुन ॥ १९ ॥

उ०—बहु जन्ममें अभ्यास कियो तप, दान अध्ययन और
पुन अभ्यास योग के द्वारा प्राप्त होत तब सोई ॥ १९ ॥

अर्थ—बहुत स जन्मों में अभ्यास किया हुआ दान, अध्ययन
तथा तप इसी अभ्यास योग द्वारा फिर भी देह को प्राप्त
होता है ॥ १९ ॥

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धन-
मा ॥ उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न-
तद्धनम् ॥ २० ॥

उ०—जो विद्या पुस्तकमें मौजूद है, पर हस्तमें धन जोई ।
समय काज काम मौजूद है, विद्या मौजूद धन सोई ॥ २० ॥

अर्थ—जो बिषा पुस्तकी में है, और जो धन पराये हाथमें है । क्योंकि घटपट्ट होने के समय में वह बिषा है, न बन है ॥ २० ॥

इति श्री चाणक्यनीतौ शिवदास पाठेय विरचित

भाषाटीकायां बाह्याऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशमोऽध्यायः ॥ १७ ॥

पुस्तकप्रत्ययार्थान् नात्रान्तं गुरुमन्त्रि-
धौ ॥ समामध्येन शोभते जारगर्भो इव
स्त्रिय ॥ १ ॥

बोद्धा—पुस्तक ही तो पठित अरु पठित नहीं गुरु पौढ़ा।
जार गर्भ तिय गज सरिस, सोह ममा महुँ नौढ़ा ॥ १ ॥

अर्थ—पुस्तक की प्रतीति में पढ़ा हुआ तथा उरुके समीप
न पढ़ा हुआ शास्त्र आर गर्भ धारिणी स्त्रियों समान समान
कल्पमें शोभा व। प्राप्त नहीं होता ॥ १ ॥

कृते प्रतिकृतिं कुर्याद्विसने प्रतिद्विसने-

म ॥ तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समा
चरेत् ॥ २ ॥

छंद—कीजे प्रति उपकार करे जो, अपने संग भला
हने हने तिहि दाप नहीं तिलि, सब काम सम बढाई ॥ २ ॥

अर्थ—उपकार करने पर प्रशुद्धकार करे, मतने पर
सही दोष नहीं है, दुष्ट से दुष्टता करे ॥ २ ॥

यद्दूर यद्दुराराध्य यच्च दूरे व्यवस्थितम्
तत्सर्वं तपसा साध्य तपो हि दुरतिक्र
मम् ॥ ३ ॥

दोहा—दूर बसत जो दूर जो, दुराध्य है जौन ।
दुरतिक्रम तप ताहि ते, सकल सुलभ तप तीन ॥ ३ ॥

अर्थ—जो दूर है, जो दुराराध्य है । जो दूर स्थित है ॥ ३ ॥
सब तप सब सुलभ है, जिससे कि तप दुरतिक्रम है ॥ ३ ॥

लोभश्चे गुणेन किं पिशुनतायद्यस्ति-
किंचातर्के सत्य चेत्तपसा च किं शुचि
मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥ सोजन्य-

यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मं-
हनेः सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्य-
स्ति किं मृत्युना ॥ ४ ॥

[छप्पय] अवगुण ते है काह, लोभ जो मनमें रहई।

काह पाप ते हानि, पिशुनता जो नर गहई ॥

तप ते है कह लाम, सत्यता जो मन माँई।

जो पवित्र मन अहे, काम तारेय ते नाँई।

कह गुण ते जो सुजनता, महनते कह जो सुपश।

सद्विद्या जो धन कहा, कहा मरण ते जो अयश ४

अर्थ-जो लोभ दे, तो अवगुणों से बचा दे। जो पुगली दे

तो पातकों से बचा दे। जो साय दे, तो तप से बचा दे, जो

पवित्र मन दे, तो काम से बचा दे ॥ जो सुजनता दे। तो गुण

से बचा दे ॥ जो सद्विद्या दे तो मृगारमे बचा दे। जो भरी

दिवा दे तो धन से बचा दे। जो अपयश दे, तो मृत्यु से

बचा दे ॥ ४ ॥

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य स
दरी ॥ शखो भिक्षाटन कुर्यान्नादत्तं
पतिष्ठते ॥ ५ ॥

छंद—आको पिता उदधि रत्नाकर, रमा मणिनि मिहि मौर
भिक्षाटन हित फिरत शख सो भिक्षु दिय दिन नौहों ॥ ५ ॥

अर्थ—जिसका पिता समुद्र है, जिसकी सगी बहिन लक्ष्मी
है। वह शख भीख मँगाने के लिए घूमण करता है। दिन
दिया नहीं मिलता ॥ ५ ॥

अशक्तस्तु भवेत्माधुर्ब्रह्मचारी च निर्ध
न ॥ व्याधिष्ठो देवभक्तश्च वृद्धा नारी
पतिव्रता ॥ ६ ॥

छंद—आधु होत असमथ तथा हो, निर्धन जन ब्रह्मचारी ।
व्याधि प्रत सुत भक्त हत नर, पतिव्रत वृद्धा नारी ॥ ६ ॥

अर्थ—असमर्थ तो साधु होता है, और निर्धनी ब्रह्मचारी
होता है। और व्याधि प्रत दुब भक्त होता है, और वृद्ध
स्त्री पतिव्रता होती है ॥ ६ ॥

नान्नोदकसम दान न तिथिर्द्वादशीम-
मा ॥ न गायत्र्या परो मन्त्रो न मातुर्दे-
वत परम् ॥ ७ ॥

हेतु-अन्न शरीर सम दान आन नहि, निषि नहि वर द्वादशी समान
गायत्री स पारम मंत्र नहि, माता त नहि देव प्रधान ॥ ७ ॥

अर्थ-अन्न अन्न समान दान नहीं है । द्वादशी व समान
निषि नहीं है ॥ गायत्री स अष्ट मंत्र नहीं है तथा माता से
अपि अष्ट देवता नहीं है ॥ ७ ॥

तक्षकस्य विष दत्त मक्षिकाया विष
शिर ॥ वृश्चिकस्य विष पुच्छे मर्वांग
दुर्जनो विषम ॥ ८ ॥

उद्-विष है शीघ्र मर्ति । वे अथ यदि विष दत्तन में ही ।
पूजा व विष रहत दुष्ट मर्ते, दुष्टन विष एक देही ॥ ८ ॥

अर्थ-विष व दान में विष रहता है, पक्षकाल शिर में
विष रहत है ॥ विषु की गूँठ में विष रहता है । तथा दुर्जन के
पराग में विष रहता है ॥ ८ ॥

पत्युराज्ञां विना नारी उपोष्य व्रतचारि
णी ॥ आयुराहरते भर्तु सा नारी नरकं
व्रजेत् ॥ ९ ॥

बोद्धा—पति आज्ञा विन रहतव्रत, अरु उपास तियजौन।
हरति आयु पतिकी तथा, नरक जाति तिय तौन ॥ ९ ॥

अर्थ—पति की आज्ञाके विना जो नारी उपासादि व्रत
करती है। वह नारी पतिकी अवस्था का हरती है तथा नरक
को जाती है ॥ ९ ॥

न दाने शुद्धयते नारी उपवासशतैर-
पि ॥ न तीर्थमेवया तद्वद्भर्तु पादोदकै-
र्यथा ॥ १० ॥

उद्ब—नहि शतशत उपवास दान से, शुद्ध हाति तिय नौहीं।
होत शुद्ध नहि तीर्थ गमन सन, भिमि पति पद कर मोहो ॥ १० ॥

अर्थ—स्त्री न सैकड़ों दान न सैकड़ों उपवास से शुद्ध होती
है। न तीर्थ सेवासे शुद्ध होती है, जैसे शर्मा न शरणोदक
से शुद्ध होती है ॥ १० ॥

पाद्यशेषं पीतशेष संध्याशेष तथैव च॥
स्नानमूत्रसम तोयं पीत्वा चांद्रायण-
चरेत् ॥ ११ ॥

छंद-पीने से बच शेष शेष बच पग घोबन से जोई ।
स्नान मूत्र सम बाहि विये नर, कर चौद्रायण सोई ॥ ११ ॥

अर्थ-पीव घोने से बचा हुआ, पीने से बचा हुआ इसी
प्रकार संध्या से बचा हुआ बच स्नान के मूत्र के समान है ॥
इसे पीकर चान्द्रायण मंत्र पढ़े ॥ ११ ॥

दानेन पाणिर्न तु क कणेन स्नानेन शुद्धि-
नर्तु चन्दनेन॥ मानेन तृप्तिर्न तु भोज-
नेन ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन ॥ १२ ॥

छंद-कर दान होत पवित्र पैसन, किये घारन मीहि ।
स्नान से शुद्धि हाति नदम, मछे नहि तन मीहि ॥
मान सन हा घृत भोजन, किये त नाई होत ।
शुद्धार से निर्बान हाय न, हानि घान पदोत ॥ १२ ॥

अर्थ-हाथ दान से शुद्ध होता है, न कि ककम से, स्नान

से शुद्धता होती है न कि संदम से, मान से वृद्धि होती है
 न कि भोजन से, ज्ञान से मुक्ति होती है न कि श्रद्धा से ॥ १२ ॥
 नापितस्य गृहे क्षौर पापाण गंधलेप
 नमः॥ आत्मरूप जले पश्यञ्छुक्रस्यापी
 श्रिय हरेत् ॥ १३ ॥

(उ०) नापित क घृह क्षौर करावन, दसब जल निज रूप।
 तन पसान से गंध लगावय, हर सम्पत्तिह्वर मूप ॥ १३ ॥
 अर्थ-माइ के घर में दज मत बनवाना, पापाण स छेकर
 गंध लगाना, अपने रूप को जल में देखना कुवेर की भी
 हस्सी हर छता दे ॥ १३ ॥

सद्य प्रज्ञाहरा वृद्धी सद्य प्रज्ञाकारी
 वच्चा ॥ सद्य शक्तिहरा नारी सद्य शक्ति
 करं पय ॥ १४ ॥

उ०-पुंदरु शीघरी हरण करति मति, पय मल वर सरकाक,
 वच वृंठ मात वचन वारी, शीघ हरति मल बाळ ॥ १४ ॥
 अर्थ-पुंदरु शीघरी बुद्धि को हरण करता दे। वच शीघ

ही बुद्धि को बढ़ाती है ॥ श्री गीष्मही चाकि हरण करती है ।
 दृष्ट तत्काल ही बल बढ़ाता है । १४ ॥

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो
 विनयगुणोपेत ॥ तनये तनयोत्पात्ति-
 सुरवरनगरे किमाधिक्यम् ॥ १५ ॥

छंद—नम्रतादि गुण युक्त पुत्र जो सखी यदि जो मारी ।
 तनय तनय उत्पत्ति होय यदि, सुर पुर सुखका मारी ॥ १५ ॥

अर्थ—ओ सुयोग्य स्त्री है ओर जो सखी है ॥ जो नम्रता-
 द गुणों से युक्त पुत्र है। पुत्र के पुत्र की उत्पत्ति है । तो दक-
 ॥ ओ के नगर में क्या अधिकता है ॥ १५ ॥

परोपकारण येषां जागर्ति हृदये सता-
 म् ॥ नश्यति विपदस्तेषां सपद स्यु पदे
 पदे ॥ १६ ॥

छंद—मिनम्रत पुरुषन हियमें जागत, निशिदिन पर सपसारा
 पद पद तिनमें मिलति सम्पदा, दोति विपति सब छार ॥ १६ ॥

अर्थ—मिन सखियों के हृदय में परापकार जागता

उनेकी विपक्षियें माता होती हैं ॥ तथा पद पद में सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥ १६ ॥

आहारानिद्राभयमैथुनानि समानि चै-
तानि नृणां पशूनाम् ॥ ज्ञान नराणां-
मधिको विशेषो ज्ञानेन हीना पशुभि-
समाना ॥ १७ ॥

बोधा—असन नींद भय संग स्त्रिय, ये पशु नर न समान।
ज्ञान हीन पशु सरिस नर, नर मई अति घर ज्ञान ॥ १७ ॥

अर्थ—आहार, निद्रा, भय, स्त्री, प्रसंग, ये मनुष्यों तथा पशुओं को समान प्राप्त हैं। मनुष्यों को विशेष अधिक ज्ञान प्राप्त है ॥ ज्ञान से हीन मनुष्य पशुकी समान है ॥ १७ ॥

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैर्दुरी-
कृता करिवरेण मदान्धबुद्ध्या
गण्डयुगमण्डनहानिरेषा भृगा पुनर्वि-
कचपद्मवने वसेति ॥ १८ ॥

तात्पर्यं गुणीजनो के निरस्कार करने से निरस्कार कर्ता की ही हानि होती है । गुणी जनतो सर्वत्र आदर पाते हैं)

उद-कर्णताल से मकरत आते यदि, प्रथमस्थितो मदमतिगजराज ।

यह तिहि पुग गण्डस्थल सति पुनि, अयत कमलवन मधुपसमाज

अर्थ-श्रेष्ठ गजराज से मदन्य बुद्धि से, कर्ण रूप तालोंसे मद गंधकी इच्छा वाले भ्रमर जो दूर किये गये हैं । यह उस क ही दोनों गण्डस्थलों के शोभा की हानि है और फिर भी तिले बन में निवास करते हैं ॥ १८ ॥

राजा वैश्या यमश्वाग्निस्तस्करो बाल
याचकौ ॥ परदु ख न जानति अष्टमो
ग्रामकंटक ॥ १९ ॥

दोहा याचक शिशु यम अनल अरु गणिका यौवन हार
अष्टम कंटक मगर नृप गनत न छाक परार ॥ १९ ॥

अर्थ-राजा, बेइया अग्नि यम, और चोर तथा बाल्य और याचक, तथा मारबो घाय ब्राह्मणों को मर देनेवाला पराये दुष्ट को नहीं जानते ॥ १९ ॥

अध-पश्यमि किं चाले पतितं तव किं-

भुवि ॥ रेरे मूर्ख न जानासि गत तारु
पय मौक्तिकम् ॥ २० ॥

दोहा-धाका नीच बखसिक्यों, का महि गिरो तिहार ॥
रे यीवन मुक्तगिरो, रे नहिं जान गैवार ॥ २० ॥

सर्प-हे शाका । तू नीचे क्यों बैठतो रे, पृथ्वी में तेरा क्या
गिर गया है ॥ १ ॥ रे । मूर्ख ॥ तू नहीं जानता मेरा ताम्र
मौक्तिक गिर गया है ॥ २० ॥

व्यालाश्रयापि विफलापि सकंठकापि-
धक्रापि पकिलभवापि दुरासदापि ॥
गन्धेन वन्धुरसि केतकि सर्वजतोरेको
गुण.खलु निवृत्ति समस्तदोषान् ॥ २१ ॥

उद-महि आश्रित कीचक कठक युत,
केतकि अफळ दुरासद बंक ।
बंधु गंध ते निज जन जग सभ,
सति इकगुणहर अमित बसंक ॥ २१ ॥

सर्प-सर्पों स आश्रित, भी. फलहीनभी. बंधुजनसभ भी

देही भी, कीचसे सत्पन्न होने वाली भी, दुःख से प्राप्त होने वाली भी है केतकी ? अपनी विमल गंधिके कारण सब प्राणियों का बंधु रूप है ॥ निश्चय एकही गुण सब दोषोंको दूर करता है ॥ २१ ॥

इति श्रीपादयनीतो शिवदास वैदिय कृत भाषा-
टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ सम्पूर्णम् ॥

पुस्तक मिलने का पता
प० श्रीधर शिवलाल ज्ञानसागर प्रेस
पोस्ट माईगा-बम्बई



